उपयोगी साहित्य माला-४

चुने हुए
ज्योतिष योग

Important Planetary Yogas

लेखक—

ज्योतिर्विद् जगन्नाथ भसीन

(Retired A. O)

[भूतपूर्व प्रधान, स्वामीरामतीर्थमिशन, दिल्ली]

[१. 'फलित सूत्र' २. 'उत्तर कालामृत' (कवि कालिदास कृत)
३ "व्यवसाय का चुनाव और आपकी आर्थिक स्थिति";
४. 'ज्योतिष और रोग', आदि ज्योतिष-ग्रन्थो के प्रणेता]

प्रकाशक

गोयल एण्ड कम्पनी, दरीबा, दिल्ली-६

प्रकाशक :
गोयल एण्ड कम्पनी
दरीबा, दिल्ली-६

मूल्य : पाँच रुपये

प्रथम संस्करण .
सन् १९७० ई०

मुद्रक
अशोक प्रिंटिंग प्रेस,
दिल्ली-६

विषय-सूची

चुने हुए ज्योतिष योग

४१ से ५०

महान् आध्यात्मिक योग; महा भाग्य योग, भ्राता की स्वल्प आयु का योग, मालव्य योग; मृदग योग; यमल जन्म योग (Twins); राज्य त्याग योग; रुचक योग; लग्नपोत्थ रोग योग; लग्न योग।

५१ से ६०

लक्ष्मी योग (क); लक्ष्मी योग (ख); लाटरी से धन प्राप्ति योग; वर्गोत्तम योग, व्यभिचार योग; वसुमत योग; वासरपति योग, विपरीत राज योग; विवाह के अभाव का योग; विज्ञान योग।

६१ से ७२

विदेश यात्रा योग; वेशि वोशि योग; वैमनस्य योग; विद्या दिशा ज्ञान योग, शकट योग; शीघ्र वैधव्य प्राप्ति योग; शराबी योग; श्रीनाथ योग; शश योग; शारदा योग; सरस्वती योग; सगीत विद्या योग, सुन्दरी स्त्री (या सुरूप पति) प्राप्ति योग।

फल हेतु की पुष्टि में एक सौ एक (१०१) प्रसिद्ध व्यक्तियों की कुण्डलियां प्रस्तुत की गयी हैं। लेखक की शैली की यह अपनी विशेषता और अनोखापन है।। 'पढिए और समझिये'

★ प्राचीन मान्यता एवं आधुनिक खोज पर आधारित

रत्न परिचय

(Introduction to Precious Stones)

रत्नो की पहचान तथा इनके चामत्कारिक गुण जानिये
और इनसे भरपूर लाभ उठाइये ।

★ दक्षिण भारत का ज्योतिष विषय पर दुर्लभ ग्रन्थ

उत्तर कालामृत

अब प्रकाश मे

ग्रथकार—कवि कालिदास

व्याख्याकार—ज्योतिर्विद् जगन्नाथ भसीन

इस ग्रथ का ज्योतिष साहित्य मे विशेष स्थान है
और कुछ सामग्री इसमे बडी अचरज पूर्ण है ।

विद्वान् लेखक की अन्य रचनाये—

१ ज्योतिष और रोग २ फलित सूत्र
३ व्यवसाय का चुनाव और आपकी आर्थिक स्थिति

मंगाने का पता —

गोयल एण्ड कम्पनी, दरीबा, दिल्ली-६

दो शब्द

योग शब्द की प्रत्येक क्षेत्र में महत्ता तथा प्रियता है। ज्योतिष के क्षेत्र में भी 'योग' शब्द बहुत आकर्षक है। तुलसीदास ने राम-चरित मानस मे कहा है कि:—

'ग्रह, भेषज, जल, पवन, पट, पाई कुयोग सुयोग
होहहिं कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहि सुलछन लोग''

अर्थात् औषधिया, जल, वायु, वस्त्र तथा 'ग्रह' कुयोग अथवा सुयोग द्वारा ही बुरी अथवा अच्छी वस्तुओ की प्राप्ति करवाते हैं। परन्तु कैसे, यह तथ्य लक्षण युत तथा लक्षणशास्त्र के जानने वाले ही जानते है। अत. ग्रह अपनी परिवर्तनशील स्थिति द्वारा विविध प्रकार के अच्छे बुरे योगों अथवा परिस्यितयो को उत्पन्न करते हैं। इन्ही भिन्न-भिन्न परिस्थितियो का अनुशीलन ही इस पुस्तक का विषय है।

(२) पूर्व आचार्यो ने ग्रहों आदि की विभिन्न स्थितियो का अध्ययन करते हुए उनकी बहुत सी स्थितियो का वर्णन अपने ग्रथों मे किया है और उन परिस्थितियो अथवा योगो को उपयुक्त नाम भी दिये है। यही योग विविध नामों से प्रसिद्ध हैं।

(३) इस सकलन से हमारा उद्देश्य यह है कि हम इन प्राचीन योगों को आधुनिक सरल वैज्ञानिक भाषा मे ऊहापोह के साथ जनता की सेवा मे उपस्थित करे। साथ ही इस पुस्तक मे हम ने उन योगो का समावेश भी कर दिया है जो जीवन मे अर्थिक, सामाजिक अथवा शारीरिक दृष्टि से महत्व रखते हैं परन्तु प्राचीन ग्रथों में उनका 'योग' रूप से वर्णन नही है।

(४) विषय को सर्व साधारण के लिये उपयोगी बनाने के लिये हम ने यथासंभव प्रत्येक योग को कई एक वास्तविक जीवन से ली गयी कुण्डलियो की सहायता से स्पष्ट करने का यत्न किया है और साथ ही प्रत्येक योग का हेतु, यथामति, उपस्थित करने का प्रयास किया है।

(५) परन्तु प्रस्तुत योगो के अच्छी प्रकार समझने के लिये कतिपय आधार भूत, अत्यावश्यक एव कुछ अशो मे विचित्र, नियम लिख दिये हैं। सम्भव है कि ये नियम कुछ स्थानो पर विचित्र प्रतीत हो परन्तु कही भी वे ज्योतिष शास्त्र के विरुद्ध नही है। बल्कि प्रत्येक स्थान मे हमने शास्त्रोक्ति द्वारा अथवा अन्य शास्त्र का प्रमाण उन योगो की पुष्टि मे उपस्थित कर दिया है।

(६) आशा है कि पाठक इस पुस्तक द्वारा ज्योतिष के मूल को पकड पावेगे और ज्योतिष को हेतु (Logic) का एक समुचित विषय बना पायेगे।

वैशाख पूर्णिमासवत् २०२७ — जगन्नाथ भसीन
२१ मई १९७० ई०

योगों के आधारभूत नियम

वैसे तो ज्योतिप शास्त्र में फल कहने के अनेक नियम है, परन्तु प्रस्तुत पुस्तक में हमने बहुधा उन्ही नियमों का उल्लेख किया है जिन का उन योगों से घनिष्ठ सम्बन्ध है जिनका परिचय हमने इस पुस्तक मे पाठकों को दिया है। ये नियम इस प्रकार है :—

: १ :

ग्रह की केन्द्रस्थिति का प्रभाव

ग्रहो आदि की केन्द्रस्थिति उस भाव-आदि पर शुभ अथवा अशुभ प्रभाव डालती है जिस भावादि से वे ग्रह केन्द्र में होते है; विशेपतया दशम स्थान में। केन्द्र-स्थान कुण्डली के प्रथम, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम भाव को कहते है। उदाहरण के लिए यदि दशम भाव मे कोई शुभ अथवा अशुभ ग्रह उपस्थित हो तो उस शुभ अथवा अशुभ ग्रह का प्रभाव लग्न पर पड़ा हुआ समझा जायेगा। पाश्चात्य ज्योतिष मे इस को "स्क्वेअर एस्पैक्ट" (Square Aspcct) कहते हैं। उनके यहाँ यह केन्द्रीय प्रभाव सदा सर्वदा बुरा ही माना जाता है, चाहे केन्द्रमें स्थित ग्रह नैसर्गिक शुभ ग्रह, वृहस्पति अथवा शुक्र ही क्यो न हो। परन्तु हमारे शास्त्र ऐसा नही मानते। हमारे शास्त्रों के अनुसार केन्द्र मे स्थित ग्रह का लग्न पर शुभ अथवा अशुभ प्रभाव उसके शुभत्व अथवा अशुभत्व पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिये, यदि कुण्डली मे शनि दशम भाव में स्थित हो

ता यद्यपि शनि की दृष्टि लग्न पर नही है तो भी शनि का लग्न पर पूर्ण प्रभाव माना जायेगा और एक पापी ग्रह के नाते शनि अपनी इस दशम स्थिति द्वारा लग्न को हानि पहुँचायेगा। इसी दशम स्थान (केन्द्र) स्थिति के नियम को आप अन्य भावो आदि पर भी लगा सकते हैं। जैसे, मान लीजिये कि बृहस्पति किसी कुण्डली के द्वितीय स्थान मे पडा हुआ है और शनि एकादश मे। यहाँ भी शनि चूँकि बृहस्पति से दशम स्थानमे विद्यमान है, अत उसका पाप अथवा पृथक्ताजनक प्रभाव द्वितीय भाव तथा बृहस्पति, दोनो, पर माना जायेगा।

प्रमाणो द्वारा पुष्टि —(१) उपर्युक्त नियम को और अधिक अच्छी प्रकार समझने के लिए, महर्षि पाराशर का निम्नलिखित श्लोक देखिये .—

सहस्त्ररश्मितश्चन्द्रे कण्ठकादिगते सति।
न्यूनमध्यवरिष्ठानि धनधीनैपुणानि च ॥

अर्थात्—जब चन्द्रमा सूर्य से केन्द्र, पनफर, अथवा आपोक्लिम स्थानो मे स्थित हो तो जिस मनुष्य की कुण्डली मे ऐसा योग हो उस को "धन" "बुद्धि" तथा निपुणता की प्राप्ति क्रमश "बहुत थोड़ी मात्रा मे" "मध्य मात्रा मे" तथा "बहुत अधिक मात्रा मे" होती है। दूसरे शब्दो मे उक्त प्राप्ति सब से कम उस समय होती है जब कि चन्द्रमा पर सूर्य का प्रभाव सबसे अधिक होता है और तीनो स्थितियो मे से सबसे अधिक प्रभाव तब पडा माना जावेगा जब कि चन्द्रमा सूर्य से केन्द्र मे होगा अथवा सूर्य चन्द्रमा से केन्द्र मे होगा। प्रभाव का अनिष्टप्रद होना यहाँ स्पष्टतया सूर्य की चन्द्रमा से केन्द्र-स्थिति के कारण ही है।

(२) इसी तथ्य को दृष्टिगोचर करते हुए "सर्वार्थचिन्ता-मणिकार" ने वाहन की प्राप्ति का उल्लेख करते हुए लिखा है —

"लग्नवाहनभाग्येशास्तु अन्योन्यं केन्द्रमाश्रिताः।
लग्ननाथे बलाढये वा वाहनाधिपति र्भवेत् ॥" (४-१७०)

अर्थात्—जब लग्न, नवम तथा चतुर्थ भावों के स्वामी परस्पर एक दूसरे से केन्द्र मे स्थित हों अथवा जब लग्नाधिपति बलवान् हो तो वाहन (Conveyance) मोटर-स्कूटर आदि की प्राप्ति होती है। भाव यह है कि परस्पर एक दूसरे से केन्द्र में होने के कारण लग्नाधिपति आदि का सबन्ध वाहनाधिपति (चतुर्थ भावाधिपति) से हो जायेगा और यह सबन्ध लग्न को अर्थात् मनुष्य के स्वयं (Self) को वाहन की प्राप्ति करवा देगा।

(३) वराह मिहिराचार्य ने भी अपने ज्योतिष ग्रथ 'बृहद् जातक' के "अरिष्टाध्याय" प्रकरण में कहा है :—

"क्षीणे 'हिमगौ व्ययगे पापैरुदयाष्टमगैः।
केन्द्रेषु शुभाश्च न चेत् क्षिप्रं निधनं प्रवदेत् ॥"

अर्थात्—यदि क्षीण चन्द्र द्वादश स्थान मे हो, लग्न तथा अष्टम स्थान में पापी ग्रह हों और किसी भी **केन्द्र स्थान में** कोई शुभ ग्रह न हो तो नवजात बालक की शीघ्र मृत्यु हो जायेगी, ऐसा कहे। यहाँ भी केन्द्रो मे शुभ ग्रहो के अभाव का तात्पर्य यह है कि इस अभाव से लग्न को कोई बल नही मिल रहा जिसके फलस्वरूप बालारिष्ट की उत्पत्ति हो रही है। यदि केन्द्र में शुभ ग्रह होगे तो उनका शुभ प्रभाव लग्न पर पड़ेगा जिससे लग्न को बल मिल जायेगा और अरिष्ट का नाश हो जायेगा।

(४) और भी कहा है :—**"चन्द्राद् दशमे भानु मातुर्मरणम् करोति पापयुत"**

अर्थात्—चन्द्र से दशम स्थान में यदि सूर्य हो और उसी स्थान में कोई पापी ग्रह भी विद्यमान हो तो माता की शीघ्र मृत्यु हो जाती

है । स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति मे चन्द्र अवश्य पाप प्रभाव मे आ जाता होगा और उसका पाप प्रभाव मे आना पापी ग्रहो की उससे दशम स्थिति होने के कारण ही हो सकता है । अत दशमस्थ ग्रहो का प्रभाव दशम से चतुर्थ पर पड़ता है—यह सिद्धात सत्य स्वीकार करना होगा ।

अत निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक राशि, ग्रह अथवा भाव पर उस ग्रह अथवा ग्रहो का प्रभाव पडेगा जोकि उक्त राशि, ग्रह अथवा भाव से दशम केन्द्र मे स्थित हो ।

: २ :

अपने स्वामी द्वारा दृष्ट भाव की वृद्धि

जब कोई भाव अपने स्वामी द्वारा दृष्ट होता है तो उस भाव की वृद्धि होती है, चाहे भाव का स्वामी नैसर्गिक पापी ग्रह-मगल, शनि-आदि ही क्यो न हो । यह वृद्धि और भी अधिक हो जाती है जब कि अपने स्वामी द्वारा दृष्ट भाव पर शुभ ग्रह का प्रभाव भी युति अथवा दृष्टि द्वारा हो । उदाहरण के लिये प० जवाहरलाल नेहरू की कुण्डली स० (१) को ले । यहा दशम भाव पर विचार कीजिये । मगल, दशमस्थ निज राशि मेष को अपनी पूर्ण अष्टम दृष्टि से देख रहा है । अत यद्यपि मङ्गल एक नैसर्गिक पापी ग्रह है तो भी उसकी अपनी राशि "मेष" पर दृष्टि, दशम भाव को जिसमे कि मेष स्थित है, बढाने तथा ऊँचा करने वाली होगी । यहाँ दशम भाव को और भी अधिक

कुण्डली स० १
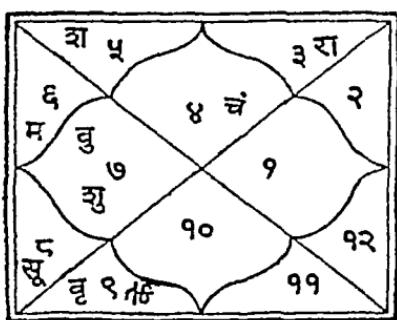
बल इस लिये मिल रहा है कि यह भाव तीन शुभ ग्रहों से भी दृष्ट है, क्योंकि इस भाव पर शुक्र तथा बुध दो नैसर्गिक शुभ ग्रहों की सप्तम दृष्टि है और तीसरे नैसर्गिक शुभ ग्रह गुरु की पञ्चम पूर्ण दृष्टि है।

(२) अपने स्वामी द्वारा दृष्ट भाव की वृद्धि विशेष रूप से उस अवस्था में भी हो जाती है जब कि शुभ ग्रहों का युति अथवा दृष्टि का प्रभाव दृष्ट राशि पर न भी हो परन्तु दृष्ट राशि के स्वामी ग्रह की दूसरी राशि पर हो। इसका उदाहरण सी० आर० दास (बगाल) की कुण्डली स० २ है। यहा मङ्गल, लग्न में स्थित निज राशि वृश्चिक को पूर्ण दृष्टि से देखता है। यद्यपि वृश्चिक पर कोई शुभ युति अथवा दृष्टि नही है तथापि मङ्गल की इतर राशि अर्थात् मेष पर चन्द्रमा की युति द्वारा तथा शुक्र तथा बुध की दृष्टि द्वारा नैसर्गिक शुभ प्रभाव पड रहा है और इसका फल वृश्चिक को भी मिल रहा है। अस्तु इस कुण्डली मे इस नियम के लागू होने के फल-स्वरूप लग्न, सूर्य लग्न तथा चन्द्र लग्न-तीनों लग्नों को अतीव बल प्राप्त हो रहा है जोकि महान् धनदायक तथा मानदायक योग है।
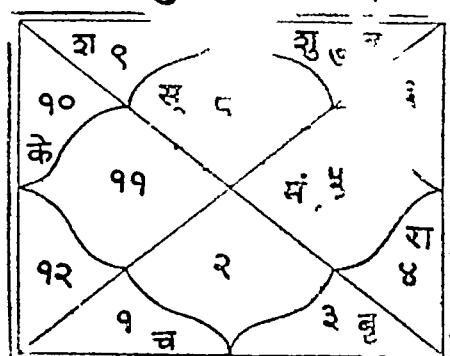
कुण्डली सं० २

श ९	सू ८	शु ७	६
१० के	११	मं ५	
१२	२		रा ४
	१ च	३ बृ	

उपर्युक्त नियम का उल्लेख हमने अपनी पुस्तक "होराशतक" में इस प्रकार किया है।

> द्विराशिपाः ये च कुजादिखेटा,
> पश्येयुरेकं ऋक्षं स्वकीयम्।
> ऋक्षं तु शुभखगैरवलोकित हि
> फलं तु तस्यान्यगृहेऽपि सुष्ठु।

अर्थात्—मङ्गल आदि दो राशियो के स्वामी जब अपनी एक राशि को देखते हो और वह राशि शुभ ग्रह द्वारा भी देखी जा रही हो तो उक्त दृष्टियो का फल उस भाव को तो मिलता ही है जहाँ पर कि दृष्ट राशि स्थित है, साथ ही, वह भाव भी बलवान् तथा शुभफलप्रद समझना चाहिये जहा पर कि देखने वाले ग्रह की दृष्टराशि से इतर राशि पडी है । उदाहरण ऊपर लिखी जवाहरलाल नेहरू की कुण्डली मे देखिये । यहाँ मङ्गल द्वारा दृष्ट होने तथा शुभ ग्रहो द्वारा दृष्ट होने का शुभ फल दशम भाव को तो मिल ही रहा है । परन्तु यह शुभ फल मङ्गल की इतर राशि अर्थात् वृश्चिक राशि वाले भाव अर्थात् पञ्चम भाव (मन्त्रणा शक्ति) को भी मिल रहा है ।

चेतावनी—परन्तु उपर्युक्त नियम का **प्रयोग** करते समय यह ध्यान रहे कि यदि कोई ग्रह अपने स्वामी द्वारा दृष्ट है और वह स्वामी पापी ग्रह है और किसी शुभ ग्रह की युति अथवा दृष्टि दृष्ट भाव पर नही है अथवा भावेश पर नही है तो भी दृष्ट भाव से लाभ होगा परन्तु यह लाभ वस्तुसबन्धी होगा, जीवनसंबन्धी न हो पावेगा। इस बात को उदाहरण से इस प्रकार समझिये—किसी कुण्डली मे कोई नैसर्गिक पापी ग्रह, जैसे शनि, लाभेश होता हुआ पचम भाव मे स्थित है तो यद्यपि शनि की एकादश भाव में स्थित अपनी राशि पर दृष्टि होने के कारण लाभ प्राप्ति पुरुषार्थ आदि लाभ भाव द्वारा प्रदिष्ट वस्तुओ की प्राप्ति तो होगी परन्तु बडे भाई की प्राप्ति, जिसका विचार एकादश भाव से किया जाता है, न होगी अर्थात् जातक को बड़े भाई का अभाव कहना चाहिये ।

उपर्युक्त साधारण नियम की **पुष्टि** पृथुयशस् इस प्रकार करता है :—

"यो यो भाव स्वामियुक्तो दृशो वा तस्य तस्यास्ति वृद्धि"
अर्थात् जो जो भाव अपने स्वामी द्वारा दृष्ट अथवा युक्त हो उस उस

भाव की वृद्धि होती है अर्थात् भाव द्वारा प्रदृष्ट वस्तुओं की प्राप्ति होती है।

इस नियम का अनुमोदन "फलदीपिका"-कार इस प्रकार करते है

"यस्मिन् राशौ वर्तते खेचरस्तद् ।
राशीशेन प्रेक्षितश्चेत् स खेट
क्षोणीपालं कीर्तिमन्तं विदध्यात्
सु स्थानश्चेत् किं पुन. पार्थिवेन्द्र ॥ (७-२८)

अर्थात्—ग्रह जिस राशि मे स्थित हो उस का स्वामी यदि उस राशि को पूर्ण दृष्टि से देखे तो राजा का जन्म होता है और यदि वह ग्रह अच्छे स्थान मे भी (केन्द्रादि में) हो तब तो, क्या कहना, राजाओ का भी राजा होता है, भाव यह है कि जो भाव अपने स्वामी द्वारा दृष्ट है वह अभिवर्धित एव प्रफुल्लित समझा जाना चाहिये। महान् व्यक्तियों की कुण्डलियो मे बहुधा लग्नेश लग्न को देखता है। अथवा चन्द्र लग्न का स्वामी चन्द्र लग्न को अथवा सूर्य लग्न का स्वामी सूर्य लग्न को देखता है जिस से लग्न अभिवर्धित होकर राज्य-धन-स्वास्थ्य आदि को प्रदान करता है।

: ३ :

भावेश जिस राशि में हो उसके स्वामी के बलाबल पर भी भावेश का फल निर्भर है

(१) किसी भावेश का अपने भाव के लिये जिसका कि वह स्वामी है अच्छा अथवा बुरा फल, जहाँ उसकी उस राशि पर निर्भर करता है जहाँ पर कि वह स्थित है, वहाँ वह फल इस बात पर भी निर्भर करता है कि जिस राशि मे वह स्थित है उसका स्वामी

बलवान् है अथवा निर्बल। उदाहरण के लिये, यदि कर्क लग्न की कुण्डली हो और सूर्य तुला राशि का चतुर्थ स्थान मे स्थित हो तो यह स्थिति अपने मे इस बात की सूचक है कि द्वितीयाधिपति सूर्य धन का द्योतक होता हुआ नीच राशिमे स्थित होकर निर्बल है। अत इस कुण्डली वाले को सूर्य अपनी दशा अन्तर्दशामे अधिक हानि पहुँचाने वाला है परन्तु सूर्य-अधिष्ठित राशि अर्थात् तुला का स्वामी शुक्र यदि सप्तम आदि शुभ स्थानो मे स्थित हो और शुभयुक्त अथवा शुभदृष्ट हो तो सूर्य को तथा द्वितीय स्थान को जिसका कि सूर्य स्वामी है, निर्बल नही समझना चाहिये।

वैद्यनाथ ने इस सम्बन्ध मे कहा भी है —

"भावेशाक्रान्तराशीशे दु स्थे भावस्य दुर्बलम्।
स्वोच्चे मित्रस्वराशिस्थे भावपुष्टिं वदेत् बुध ॥

अर्थात्—किसी भाव का स्वामी जहाँ पडा हो उस राशि का स्वामी यदि दु स्थान अर्थात् छठे, आठवे, अथवा बारहवे भाव मे स्थित हो तो पूर्व भाव को दुर्बल समझना चाहिये और यदि वह अपनी उच्च राशि अथवा अपने मित्र ग्रह की राशि अथवा अपनी राशि मे स्थित हो तो पूर्व भाव की पुष्टि कहनी चाहिये।

: ४ :

शुक्र की द्वादश स्थिति

शुक्र ग्रह चूँकि एक भोगात्मक ग्रह है इस कारण इसका भोगात्मक द्वादश भाव से विशेष सबन्ध तथा लगाव है। जितना अधिक शुक्र द्वादश भाव तथा उसके स्वामी पर प्रभाव डालेगा उतना ही अधिक वह शुक्र जातक के लिये भोगो की सृष्टि करेगा। अत. स्पष्ट है कि जब द्वादशेश तथा शुक्र दोनो इकट्ठे द्वादश स्थान मे स्थित हो तो मनुष्य बहुत धन तथा भोगो के भोगने वाला होगा। इसी लिये हमने

अपनी पुस्तक "होराशतक" में कहा है कि :—

"कथितं नियमैरेव द्वादशस्थानगो भृगु ।
अन्त्यपेन च संयुक्तो विशेषेण धनदायक ॥

अर्थात् कथित नियमों को दृष्टि में रखते हुए हम कह सकते हैं कि जब शुक्र द्वादशाधिपति के साथ होकर द्वादश स्थान ही मे स्थित हो तो विशेष धन के देने वाला होता है ।

अन्य ग्रन्थकारों ने भी शुक्र की द्वादश स्थिति के बारे में ऐसे ही विचारों को व्यक्त किया है । "भावार्थ रत्नाकर"-कार का कहना है कि :—

मेषे जातस्य धनपो व्ययस्थोऽपि कविः शुभः ।
इतर ऋक्षे तु जातस्य व्ययस्थो धनपोऽशुभः ॥

केवल मेष लग्न वालों का शुक्र यदि द्वादश स्थान मे हो तो शुभ फल करने वाला अर्थात् धन देने वाला है । अन्य कोई लग्न हो और ग्रह द्वितीयेश होकर द्वादश हो तो शुभदायक नही होता ।

'उत्तरकालामृत' के रचयिता ने भी शुक्र की द्वादश स्थिति के संबन्ध मे यही विचार व्यक्त किये है । इनका कहना है कि :—

"स्वोच्चेस्वर्क्ष सुरेज्यभस्थरविजो,
लग्नस्थितोऽपीष्टकृत् ।
शुक्रो द्वादशसस्थितोऽपि शुभदो
मन्दाँशराशी बिना" (४-१६)

अर्थात् शनि यदि अपनी उच्च अथवा निज राशि में अथवा गुरु की राशि में, लग्न में स्थित हो तो शुभ फल करता है और शुक्र द्वादश भाव में भी यदि शनि की राशि अथवा नवांश के बिना स्थित हो तो भी शुभ फल करता है ।

(२) शुक्र का लगाव द्वादश भाव से इतना घनिष्ठ है कि शुक्र यदि षष्ठ भाव में भी स्थित हो तो भी शुभ फल ही करता है ।

इसी सबन्ध मे "उत्तर कालामृतकार" का कहना है कि "**षष्ठस्थ शुभकृत्कवि**" अर्थात् छठे स्थान मे स्थित शुक्र शुभकारी होता है। "भावार्थरत्नाकर" के रचयिता का भी शुक्र की षष्ठ स्थान मे स्थिति के सम्बन्ध मे यही विचार है —

"शुक्रस्य षष्ठसंस्थान योगदं भवति ध्रुवम् ।
व्ययस्थितस्य शुक्रस्य यथायोगं वदन्ति हि ।।"

अर्थात् शुक्र का छठे भाव मे होना योग अर्थात् शुभता की अवश्य सृष्टि करता है, जैसी शुभता उसके द्वादश भाव मे स्थिति से उत्पन्न होती है ।

भावार्थ रत्नाकरकार ने कर्क लग्न वालो के लिये भी शुक्र की द्वादश स्थिति को योगप्रद माना है । उनका कहना है कि .—

"कर्के जातस्य शुक्रस्तु व्ययस्थो धनगोऽपि वा ।
योगप्रदस्तु भवति हि अन्यत्र न हि योगद ।।

अर्थात्—कर्क लग्न मे जन्म लेने वालो के लिये शुक्र का व्यय अथवा धन स्थान मे स्थित होना योग अर्थात् धनादि शुभ फल देने वाला होता है । अन्यत्र योगदायक नही ।

निष्कर्ष—यह है कि द्वादश भाव से सबन्ध होने से शुक्र अनुकूल स्थिति पाकर तथा प्रबलता को पाकर शुभ फल को करता है । शुक्र की द्वादश स्थिति से शुक्र को बल मिलता है और शुक्र चूँकि "स्त्री" का कारक है अत. जिन कुण्डलियो मे शुक्र द्वादश स्थान मे स्थित होता है उन की स्त्री प्राय दीर्घजीवी होती है । निष्कर्ष यह कि साधारण नियम, कि जो ग्रह द्वादश भाव मे स्थित हो वह निर्बल हो जाता है, शुक्र पर लागू नही होता ।

: ५ :

मूल्यप्रद अंग (FACTORS)

आय (Income) का भाव एकादश है और द्वितीय भाव एकादश से चतुर्थ होने के कारण "आय" के रहने का या रखने का घर "धनागार" अथवा (Accumulated Income) है। धन (Wealth) और मूल्य (Value) का परस्पर घनिष्ठ सबन्ध है। जितना अधिक धन प्राप्त होगा अथवा सचित होगा उतना ही अधिक उसका मूल्य भी होगा। अत "मूल्य" का निरीक्षण-परीक्षण अथवा विवेचन हमको उन सब भाव आदिको द्वारा तथा उनके स्वामियो द्वारा करना चाहिये जो कि धन का किसी भी रूप से प्रतिनिधित्व करते हो। अतः किसी वस्तु-सामग्री-पुरुष-सस्था आदि को मूल्यवान् उत्कृष्ट उच्चकुलीन, आदि बनाने वाले निम्नलिखित मूल्यप्रद कारक (Factors) है :—

(१) लग्न (२) लग्नाधिपति (३) धनभाव (४) धनेश (५) एकादश भाव (६) एकादश भाव का स्वामी (७) गुरु (८) चन्द्र लग्न (९) चन्द्रलग्न का स्वामी (१०) सूर्य लग्न (११) सूर्य लग्न का स्वामी।

लग्न का महत्व—इस सन्दर्भ मे 'सर्वार्थ चिन्तामणि" मे आया है कि :—

"लाभेशतत्कारक-दृष्टि-योगात्
एव वदन्त्यत्र धने बहुत्वम् ॥" (३-६९)

अर्थात् एकादश भाव का स्वामी तथा उसी भाव का कारक अर्थात् "बृहस्पति," इन दो ग्रहो की युति अथवा दृष्टि धन के बाहुल्य (Abundance) की सूचक है। अर्थात् जिस भाव आदि पर इन दो ग्रहो का शुभ प्रभाव, युति अथवा दृष्टि द्वारा पड़ रहा हो, उस भाव आदि

की वृद्धि उस की उत्कृष्टता, उस का मान तथा उस के मूल्य मे वृद्धि होती है ।

लग्न की जितनी श्लाघा की जाये उतनी कम है । लग्न के बलशाली होने से मनुष्य को जीवन मे मूल्य की प्राप्ति होती है अर्थात् उसे ऐसी मूल्यवान् वस्तुएँ जैसे स्वास्थ्य, अथवा धन चरित्र-आयु आदि की प्राप्ति होती है और लग्ने जितनी जितनी बलवान् होती चली जायेगी मनुष्य उपर्युक्त धनादि मूल्यो से उतना ही अधिक सम्पन्न होता चला जायेगा ।

लग्न के महत्व की ओर सकेत करने के लिये "सारावली" का निम्नलिखित श्लोक ही पर्याप्त होगा :—

> **"लग्ने त्रयो विगतशोकविवर्द्धितानां,**
> **कुर्वन्ति जन्मशुभदा पृथिवीपतीनाम् ।**
> **पापस्तु रोगभयशोकपरिप्लुतानाम्,**
> **बह्वाशिनाम् सकललोकतिरस्कृतानाम् ।।"** (३४-१२)

अर्थात् यदि लग्न मे तीन शुभ ग्रह पड जाये तो शोकरहित राजाओ के जन्म के परिचायक होते हैं और इस के विरुद्ध यदि लग्न मे तीन पापी ग्रह पड जाये तो मनुष्य रोग और शोक से प्रपीडित निर्धन तथा अपमानित होकर जीवन के दिन काटता है ।

इस प्रकार लग्नेश,एकादशेश, धनेश तथा गुरु यह चार ग्रह विशेष रूप से धन तथा मूल्य के द्योतक है और अपनी युति तथा दृष्टि से प्रभावित भाव से सबद्ध बातो को अत्यधिक मूल्यवान् बनाते है । उदाहरण के लिए यदि कुम्भ लग्न का जन्म हो और सूर्य एकादश भाव मे बृहस्पति से अथवा चन्द्र से दृष्ट हो तो मनुष्य का विवाह किसी बहुत ऊंचे राजा-नबाव-रईस की लडकी से होता है । इसी प्रकार यदि कुम्भ लग्न हो और गुरु चतुर्थ भाव तथा चतुर्थेश दोनों पर अपना युति तथा दृष्टि का प्रभाव डाल रहा हो तो व्यक्ति को लाखो की जायदाद अथवा सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ।

: ६ :

धन की दृष्टि से शुभ तथा अशुभ भाव

कुण्डली के बारह भावों को स्थूलरूप से दो भागों मे विभक्त किया जा सकता है, एक शुभ भाव, दूसरा अशुभ भाव । पहले अर्थात् शुभ विभाग में लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, नवम, दशम एकादश भावों का समावेश है और दूसरे विभाग मे तृतीय, षष्ठ, अष्टम, तथा द्वादश भावो का समावेश होता है। यह वर्गीकरण आर्थिक दृष्टिकोण से है अर्थात् लग्न, द्वितीय, चतुर्थ, पचम आदि भावों के स्वामी जब केन्द्र आदि शुभ स्थानो मे स्थित होकर शुभ-युक्त अथवा शुभदृष्ट होंगे तो मनुष्य को धन, सुख, भाग्य आदि की प्राप्ति तथा इनका सबर्धन प्राप्त होगा और इस के विपरीत जब तृतीय, षष्ठ, अष्टम, द्वादश भावों के स्वामी केन्द्रादि मे बलवान् होंगे तो अभाव, दरिद्रता, रोग आदि की प्राप्ति अथवा वृद्धि होगी। इसी प्रकार जब द्वितीय, चतुर्थ, पचम भावो के स्वामी निर्बल हो तो धन आदि का नाश कहना चाहिये और षष्ठेश आदि ग्रह निर्बल हो तो धन की प्राप्ति कहनी चाहिये। एकादश भाव के स्वामी को महर्षि पाराशर ने पापी माना है। उनका इस ग्रह को पापी मानना स्वास्थ्य अर्थात् मारक दृष्टि से है न कि आर्थिक दृष्टि से। अत. एकादशेश भले ही किन्ही दशाओं मे रोग आदि देता हो, प्रायः बलवान् एका-दशेश धनदायक ही सिद्ध होता है।

: ७ :

पार्श्वगामिनी दृष्टि

यद्यपि यह साधारण नियम सत्य है कि ग्रहों की षष्ठ तथा अष्टम भाव में स्थिति उनके लिये हानिकारक है; परन्तु यह ध्यान रहे कि

यदि किसी भाव से अथवा ग्रह से षष्ठ और अष्टम दोनो स्थानो मे (एक मे नही) शुभ ग्रह आ बैठे तो उस भाव अथवा ग्रह की अवश्य वृद्धि होगी जिस से कि ग्रह षष्ठ तथा अष्टम मे है। जैसे किसी भी लग्न से शुक्र छठे पडा हो और गुरु अष्टम मे तो लग्न को शुक्र तथा गुरु के कारण बहुत बल प्राप्त हो जाता है। इस मे कारण यह है कि ऐसी स्थिति मे शुक्र की दृष्टि तो लग्न से द्वादश स्थान पर पडेगी और गुरु की दृष्टि लग्न से द्वितीय स्थान पर। इस प्रकार लग्न के दोनो ओर शुभ प्रभाव पडने से, मानो, लग्न को शुभ मध्यत्व की प्राप्ति हुई हो। इस दृष्टि को हम ने अपनी पुस्तक "होरा शतक" मे "पार्श्वगामिनी" दृष्टि के नाम से उल्लेख किया है। वहा लिखा है —

(क) होराशास्त्रस्य विद्वद्भि शुभमध्यत्वमुदाहृतम्।
एव च पापमध्यत्वं भावानां फल निर्णये

(ख) चन्द्राधियोगे तु चन्द्रात् षष्ठाष्टमा शुभा ।
स्वपार्श्वदृष्ट्यैव यच्छन्ति अधियोगस्य शुभं फलम् ।।

अर्थात् ज्योति शास्त्र जानने वालो ने शुभ मध्यत्व (ग्रह अथवा भाव का दो शुभ ग्रहो के बीच मे आ जाना) और "पाप मध्यत्व" (ग्रह अथवा भाव का दो पापी ग्रहो के बीच मे आ जाना) का उल्लेख किया है। जब हम "चन्द्राधि-योग" नाम के योग (चन्द्र से छठे, सातवे आठवें शुभ ग्रहो के होने पर यह योग बनता है) पर विचार करते है तो उस की शुभता का कारण यह है कि चन्द्र के द्वितीय तथा द्वादश भाव पर शुभ प्रभाव पडता है, जिस से चन्द्र को मानो शुभमध्यत्व का लाभ पहुँचता है जिस के फल स्वरूप वह लग्न रूप से धन, आयु, यश, स्वास्थ्य सद्गुण आदि को देता है।

निष्कर्ष यह कि जिस किसी भी भाव या ग्रह से शुभ ग्रह षष्ठ तथा अष्टम होगे उस भाव अथवा ग्रह की खूब वृद्धि करेगे।

: ८ :

पाराशरीय राजयोग

(१) **भावों की पांच श्रेणियाँ** —कुण्डली के द्वादश भावो को पाँच श्रेणियों मे विभक्त किया गया है। प्रथम, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम भाव केन्द्र सज्ञा वाले **प्रथम श्रेणी** में; लग्न, पचम, तथा नवम भाव जिनकी त्रिकोण सज्ञा है **द्वितीय श्रेणी** मे; द्वितीय तथा द्वादश भाव **तृतीय श्रेणी** मे; तृतीय, षष्ठ तथा एकादश भाव **चतुर्थ श्रेणी** में; तथा अष्टमेश **पंचम श्रेणी** मे आता है।

(२) केन्द्र के स्वामी ग्रह यदि नैसर्गिक शुभ गुरु, शुक्र आदि हों तो अपनी नैसर्गिक शुभता खो देते है।

(३) त्रिकोण के स्वामी सदा सर्वदा शुभ फल देते हैं; चाहे वे नैसर्गिक शुभ ग्रह हों अथवा पापी।

(४) द्वितीय तथा द्वादश भाव के स्वामी—

(क) यदि एक राशि के स्वामी अर्थात् सूर्य अथवा चन्द्र हों तो शुभ अथवा अशुभ फल सूर्य तथा चन्द्र के बल तथा स्थिति पर निर्भर करता है।

(ख) यदि दो राशियो के स्वामी हों तो फल उस भाव का होगा जिस मे कि ग्रह की द्वादशेतर राशि स्थित हो।

(५) तृतीय, षष्ठ तथा एकादश स्थान के स्वामी पापी कहलाते हैं। एकादशेश स्वास्थ्य के लिये बुरा है, धन के लिये नही।

(६) अष्टमेश-पापी है। बलवान् अष्टमेश आयुदायक तो है परन्तु निर्धन बनाता है।

(७) सूर्य तथा चन्द्र को अष्टमेश होने का दोष नही लगता।

(८) अष्टम तथा तृतीय आयु स्थान है। इनसे द्वादश अर्थात् सप्तम तथा द्वितीय मारक स्थान है। निर्बल द्वितीयेश तथा सप्तमेश

अपनी दशा अन्तर्दशा मे शारीरिक कष्ट देते है। और यदि आयु का अन्तिम खण्ड आचुका हो तो मृत्यु भी देते हैं।

(९) केन्द्राधिपत्य से जो शुभ ग्रह अपनी शुभता खो बेठते हैं, उनमे गुरु सब से अधिक शुभ होने के कारण सब से अधिक शुभता खो वैठता है। अत दो केन्द्रो का स्वामी गुरु यदि द्वितीय षष्ठ, अष्टम, द्वादश आदि अनिष्टकारी भावो मे निर्बल होकर स्थित हो तो बहुत अरिष्ट करता है।

(१०) ग्रह की अन्तिम शुभता अथवा अशुभता का निर्णय उस की दोनो राशियो के आधिपत्य द्वारा करना चाहिये। जैसे कर्क लग्न के लिये सप्तम केन्द्र का स्वामी होने के कारण शनि यद्यपि अपनी अशुभता खो देता है फिर भी अशुभ ही रहता है, क्योकि जिस दूसरी राशि का यह स्वामी है वह कु भ राशि अष्टम मे पड़ती है और अष्टमेश पापी होता ही है। इसी प्रकार तुला लग्न के लिये मङ्गल द्वितीयाधिपति होने के कारण सप्तम भाव का जिसमें कि इस की अन्य राशि स्थित है, फल करेगा। अब मङ्गल एक पापी ग्रह है। उसका सप्तम केन्द्र का स्वामी होना उसकी अशुभता का नाश करता है अत. तुला लग्न के लिये मङ्गल थोडा शुभ ही फल करेगा। हा, थोडासा भी पाप-प्रभाव यदि इस पर होगा तो अनिष्ट फल देगा। बृषभ लग्न वालो के लिये शनि योग कारक ही मानना चाहिये क्योकि केन्द्र का स्वामी (दशमेश) होने के कारण शनि अशुभ नही रहता और नवमेश होने के कारण शुभ होता ही है।

(११) गुरु को दो केन्द्रो के स्वामी होने का दोष लगता है परन्तु धनु लग्न अथवा मीन लग्न हो तब नही; क्योकि ऐसी दशा मे गुरु लग्नेश भी हो जाता है और गुरु का एक साथ केन्द्र तथा कोण (लग्न कोण भी है) का स्वामी होना उसे दोषी बनाने की बजाय उलटा योगकारक बना देता है। इसी प्रकार बुध को भी दो केन्द्रों

के आधिपत्य का दोष लगता है परन्तु मिथुन अथवा कन्या लग्न वालों के लिये नही; क्योंकि यहा भी बुध केन्द्र तथा कोण का एक साथ स्वामी वन जाता है।

: ६ :

एक ही तथ्य के द्योतक दो ग्रहों का युति-दृष्टि-सम्बन्ध

(१) जब दो ऐसे ग्रहों आदि का जो एक ही तथ्य के द्योतक हों परस्पर युति अथवा दृष्टि द्वारा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो उस तथ्य सबन्धी घटनाएँ घटती है। उदाहरणार्थ—लग्न तथा अष्टम भाव दोनो ही "आयु" के द्योतक है। अत यदि लग्नेश तथा अष्टमेश लग्न में इकट्ठे बैठे हों अथवा अष्टम स्थान मे एकत्र हों अथवा अन्य किसी भी स्थान मे एक साथ वैठे हों और दोनो पर शुभ प्रभाव पड़ रहा हो तो आयु बहुत दीर्घ हो जाती है; कारण कि शुभता का प्रभाव लग्न तथा अष्टम अथवा उनके स्वामी, सभी आयु-द्योतक अगों पर पडेगा। इसी नियमानुसार यदि लग्नेश तथा अष्टमेश को उपर्युक्त स्थित मे पापी ग्रह देखते हों अथवा अन्य किसी प्रकार से प्रभावित करते हों तो आयु को बहुत कम कर देगे। इस सिद्धान्त को हम सादृश्य सिद्धान्त (Principle of Similarity) कहेगे। इस सिद्धान्तानुसार जव द्वितीयाधिपति पचम भाव में बलवान् हो तो मनुष्य मे भाषण शक्ति (Oratory) की विशेष योग्यता आ जाती है क्योंकि द्वितीय तथा पचम दोनो भाव भाषणशक्ति के सूचक हैं। लग्न, चूं कि व्यक्ति के निज (self) का प्रतिनिधित्व करता है, यह अपने द्वारा अर्थात् लग्नेश द्वारा जिस कार्य को दर्शाता है उस कार्य में निज कर्तृत्व (Initiative by Self) आ जाता है इसी प्रकार जव तृतीयेश अपना कार्य करता है तो भुजा अथवा वाहु का प्रति-

निधि होने के नाते वह भी निज बाहु द्वारा कृत-(Daliberately done) कार्य को दर्शाता है। अत लग्नेश और तृतीयेश दोनो पापी होते हुए जब किसी ऐसे ग्रह आदि पर अपना प्रभाव डाले जो कि किसी सम्बन्धी आदि का प्रतिनिधित्व करता हो तो मनुष्य जान-बूझकर और सोच समझकर उस सबन्धी के विरुद्ध आचरण करेगा। उदाहरणार्थ औरगजेब की कुण्डली मे जिसका कि कुम्भ लग्न है,लग्नाधिपति पापी शनि तथा तृतीयाधिपति पापी मङ्गल, दोनो ही, गुरु को पूर्ण दृष्टि से देख रहे है, इधर शनि और मङ्गल जान बूझकर विरोध करने के लिए प्रतिनिधि है तो उधर गुरु भी एकादशाधिपति होने तथा बडे भाइयो का कारक होने के नाते बडे भाइयो द्वारा उस विरोध का शिकार होने का पूर्ण प्रतिनिधि है। इसी लिये और-ङ्गजेब ने जान बूझकर अपने बडे भाइयो को मरवा डाला। इसके विपरीत यदि लग्न तुला हो और लग्नेश शुक्र तथा तृतीयेश गुरु, दोनों शुभ ग्रह यदि किसी भावादि पर प्रभाव डाले तो मनुष्य जी जान से उस भाव से सम्बद्ध व्यक्ति की सहायता करेगा और उसके लिये प्रत्येक त्याग करने के लिये उद्यत रहेगा। निष्कर्ष यह कि लग्नेश तथा तृतीयेश सादृश्य के सिद्धान्त के अनुसार मिलकर काम करेगे।

(२ उपर्युक्त सिद्धान्तानुसार जब लग्नेश, धनेश तथा लाभेश आदि धनद्योतक ग्रहो का परस्पर युति आदि द्वारा सबन्ध स्थापित हो तो इस को एक महान् धनदायक योग समझना चाहिये क्योकि लग्न, धन, लाभ—सब धन के द्योतक हैं

: १० :

द्वितीया-स्थान विद्या अथवा ज्ञान का स्थान

द्वितीय स्थान "विद्या" का स्थान है। इसे ज्ञान अथवा जानकारी का भाव भी कह सकते हैं। जिस प्रकार का प्रभाव द्वितीय स्थान पर

अथवा उसके स्वामी पर पड़ता है विद्या भी मनुष्य की उस ही प्रकार की होती है। इस वात की पुष्टि में कि द्वितीय भाव से विद्या देखनी चाहिये हम ने अपने रचित "फलित सूत्र" नाम के ग्रन्थ के पृष्ठ ६७ पर "सर्वार्थचिन्तमणि" तथा "उत्तरकालामृत" के उद्धरण दिये है । द्वितीय भाव पर गुरु और शुक्र का प्रभाव मनुष्य को कानून की विद्या (Law) प्रदान करता है। शनि तथा राहु के प्रभाव से डाक्टरी विद्या (Medical line) की प्राप्ति होती है। शुक्र तथा बुध के प्रभाव से कला (arts) का ज्ञान होता है। आदि आदि।

इस सन्दर्भ मे "ज्योतिषरत्नाकर"-कार लिखते है :—

"यदि दूसरे भाव का स्वामी उच्च भाव में स्थित होकर बलवान् हो तो मनुष्य अपने धन से कुटुम्ब को आश्रय देनेवाला, उत्कृष्ट गुणों से युक्त, धनवान्, सुन्दर मुखवाला, दूरदर्शी (Farsgihted) होता है। यदि ऐसी स्थिति मे द्वितीयाधिपति का सूय से संबन्ध हो तो मनुष्य लोगों का उपकार करने वाला होता है। वह विद्या तथा धन दोनो की प्राप्ति करता है। और यदि द्वितीयाधिपति से शनि का सम्वन्ध हो तो क्षुद्र और अल्प (थोड़ी) विद्यावाला होता है।" इस से स्पष्ट है कि यह ग्रन्थकार भी द्वितीय भाव को ही विद्या का भाव मानते हैं।

: ११ :

पृथक्ताजनक ग्रह

(१) सूर्य, शनि तथा राहु ये तीन ग्रह मुख्यरूप से "पृथक्ताजनक" ग्रह है अर्थात् इन ग्रहो मे से दो अथवा तीनों का जिस भाव आदि पर युति अथवा दृष्टि से प्रभाव पड़ेगा, मनुष्य को उस भाव आदि से संवद्ध वातों से पृथक् होना पड़ेगा। उदाहरणरूप से, यदि

सूर्य, राहु अथवा सूर्य, शनि अथवा राहु, शनि, अथवा सूर्य, राहु, शनि का प्रभाव द्वितीय भाव तथा उसके स्वामी पर पडे तो मनुष्य अपने कुटम्ब (परिवार) से पृथक् हो जाता है जैसे कि सन्यासी लोग हो जाते हैं। यदि इन पृथक्ताजनक ग्रहो का प्रभाव तृतीय भाव तथा उसके स्वामी पर हो तो मनुष्य अपने लघु भ्राता से अलग हो जायेगा। यदि यह प्रभाव चतुर्थ भाव तथा उसके स्वामी पर पडे तो मनुष्य घर-बार भूमि-जायदाद से दूर चला जाता है। यदि यह प्रभाव पचम भाव पर तथा उसके स्वामी पर हो तो मनुष्य अपने बच्चो से पृथक् हो जाता है, उसके गर्भ नष्ट हो जाते हैं। यदि यह प्रभाव सप्तम, सप्त-मेश पर हो तो मनुष्य अपनी पत्नी अथवा पत्नी अपने पति से पृथक् हो जाती है—जैसा कि तलाक (Divorce) अथवा कानूनी पृथक्ता (Judicial seperation) मे होता है। जब यह प्रभाव दशम भाव, दशमेश तथा सूर्य पर पडता है तो मनुष्य राज्यपाट को छोड देता है या वह उससे छिन जाता है; आदि।

: १२ :

"वार" संबद्ध ग्रह का लग्न पर प्रभाव

मनुष्य जिस वार आदि मे उत्पन्न होता है उस वार से सबद्ध ग्रह का मनुष्य पर सदैव प्रभाव रहता है। अत जब मनुष्य किसी शुभ वार जैसे सोमवार, बुधवार,गुरुवार, शुक्रवार मे उत्पन्न होता है तो चन्द्रमा, बुध, गुरु अथवा शुक्र का कुछ प्रभाव लग्न पर अवश्य पडता है। और यदि जिस शुभवार मे मनुष्य का जन्म हो उसका स्वामी शुभ ग्रह भी यदि सूर्य लग्न, अथवा चन्द्र लग्न अथवा लग्न मे उप-स्थित हो तो उस शुभ ग्रह का लग्न पर विशेप प्रभाव माना जावेगा और लग्न को विशेष शुभता प्राप्त होगी जिसके फलस्वरूप मनुष्य को धन-सुख-यश आदि की प्राप्ति होगी। अत जहाँ किसी लग्न मे

आप शुभ-ग्रह देखे तो इस बात की जाच कर ले कि कही जन्म भी तो उसी ग्रह के वार (Day) में तो नही है। यदि है तो बहुत शुभ योग है।

: १२ :

"भावात् भावम्" का सिद्धान्त

जो सकेत (पुत्र, चिन्ता आदि) पचम भाव देता है वही सकेत पंचम से पंचम भाव भी देता है। जो सकेत (भूमि आदि का विचार) चतुर्थ भाव देता है वही सकेत चतुर्थ से चतुर्थ अर्थात् सप्तम भाव भी देता है अर्थात् आप भूमि घर आदि का विचार सप्तम भाव से भी कर सकते है। जो विचार रोग, रिपुका आप षष्ठ भाव से करते हैं वही आप एकादश से, जो कि छठे से छठा है, भी कर सकते है अर्थात् ग्यारहवे भाव का स्वामी भी उसी प्रकार प्रहारात्मक आदि है, जिस प्रकार कि षष्ठेश। सप्तम भाव (स्त्री) का विचार आप सप्तम से सप्तम भाव के स्वामी अर्थात् लग्नेश द्वारा भी कर सकते हैं। आयु का विचार आप अष्टम भाव से करते है तो 'अष्टमात् अष्टम च यत्' इस पाराशरीय उक्ति के अनुसार आयु का विचार आप तृतीय भाव से भी कर सकते हैं। भाग्य अथवा पिता का विचार जहाँ आप नवम् स्थान से करते है वहाँ नवम से नवम अर्थात् पंचम भाव से भी कर सकते है। "राज्य" का विचार दशम भाव से होता है परन्तु दशम से दशम अर्थात् सप्तम से राज्य का विचार करना भी उपयुक्त ही है। एकादश भाव से आय (Income) देखी जाती है तो आय देखने के लिये आप एकादश से एकादश अर्थात् नवम भाव भी विचार में ले सकते है।

निष्कर्ष यह है कि उपर्युक्त सिद्धान्त यह कहता है कि आप जिस संख्या के भाव पर विचार करे उससे उतनी ही संख्या आगे वाले

भाव पर अथवा आरूढ भाव पर भी उसी सम्बन्ध मे विचार कर सकते है। उपर्युक्त सिद्धात को "भावात् भावम्" का सिद्धान्त कहते है।

कुछ अपवाद—यहाँ कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। जैसे द्वितीय भाव धन का है तो "भावात्भावम्" के सिद्धान्तानुसार यद्यपि द्वितीय से द्वितीय अर्थात् तृतीय भाव धन का भाव किया जाना चाहिये परन्तु ऐसा नही करना चाहिये क्योकि द्वितीय तथा तृतीय मे अत्यन्त विरोध है। इसी प्रकार तृतीय पर विचार करते समय हम तृतीय से तृतीय पर विचार नही करेगे यदि उनके विचाराधीन गुणों मे विरोध हो। इसी प्रकार द्वादश स्थान का विचार भी एकादश स्थान (जो कि द्वादश से द्वादश है) से नही करना चाहिये। इन अपवादोको छोडकर अन्यत्र "भावात् भावम्" के सिद्धान्त का प्रयोग बहुत लाभप्रद रहता है।

: १४ :

समस्याओं के समाधान के व्यापक नियम

ससार की कोई भी समस्या हो उस का समाधान ज्योतिशास्त्रश तीन बातो का विचार करके करता है—

(क) उपयुक्त भाव के विवेचन से,

(ख) उसी भावाधिपति के विवेचन से,

(ग) उसी भाव के "कारक" के विवेचन से।

यदि भाव, भावाधिपति तथा कारक तीनो के तीनों निर्बल, पापयुक्त तथा पापदृष्ट हो तो भाव सम्बन्धी बातो का अभाव अथवा नाश कहना चाहिये। और यदि तीनो निर्बल पाप दृष्ट अथवा पाप युक्त होते हुए भी साथ ही शुभ दृष्ट अथवा शुभयुक्त भी है तो बड़ी

कठिनता से भात्र प्रदर्शित वस्तु की प्राप्ति कहनी चाहिये। जैसा कि "फलदीपिका"-कार का कहना है—

"भावाधीशे च भावे सति बलरहिते च ग्रहे कारकाख्ये" अर्थात् भाव भावाधीश तथा उस भाव के कारक के बल रहित होने पर भाव के फल का नाश होता है।

जैसे किसी ने प्रश्न किया कि अमुक कुण्डली में पुत्रप्राप्ति का योग है अथवा नही तो पचम आदि भाव, पचमेश तथा गुरु (जो पुत्र कारक है) इन सब पर विचार द्वारा प्रश्न का निर्णय देना चाहिये।

(२) उपर्युक्त सन्दर्भ मे इतना ध्यान रखना चाहिये कि यदि किसी भाव का कारक कोई शुभ ग्रह भी हो परन्तु यदि वह उस भावाधिपति से अथवा भाव से एक ही सीध मे अथवा एकत्र पड़ा है तो विचार करते समय शुभ कारक ग्रह तथा भाव अथवा भावेश का एक साथ विचार करना चहिये न कि पृथक् पृथक्।

(३) इस बात को निम्नलिखित कुण्डली से स्पष्ट करते है।

कु० स० ३
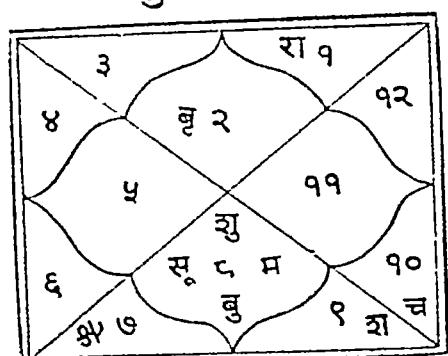
यह एक लडकी की कुण्डली है जिस का विवाह नही हो सका यद्यपि वह कुलीन, सुशील, तथा सुन्दर है। यहाँ विचारणीय विषय तीन है सप्तम भाव, सप्तमेश तथा गुरु। ये तीनो स्त्रियो के लिये पति सूचक होते हैं। अब यदि आप केवल सप्तम, सप्तमेश मङ्गल पर पहले विचार करेग तो आप कह देगे कि एक प्रबल गुरु की जब सप्तम भाव तथा उसके स्वामी दोनो पर शुभ दृष्टि पड रही है तो कोई कारण नही कि लडकी अविवहित रहे। परन्तु ऐसा विचार उपयुक्त न होगा। क्योकि इस कुण्डली मे सप्तम, सप्त-

मेश तथा सप्तम भाव का कारक तीनो एक सीध मे (१८० डिग्री पर) अत तीनो पर एक साथ विचार उचित रहेगा। जब हम तीनो अगो अर्थात् सप्तम भाव, सप्तमेश तथा गुरु पर एक साथ विचार करते है तो देखते है कि तीनो पर सूर्य का "पृथक्‌ताजनक" तथा पापात्मक प्रभाव है और साथ ही तीनो के तीनो अगो (Factors) पर शनि तथा केतु का या तो ,'पापमध्यत्व है या इनकी "पार्श्वगा-मिनी" दृष्टि (देखिये नियम ७) उक्त तीनो अगो पर है। यद्यपि शुक्र का प्रभाव भी उक्त तीनो अगो पर है, परन्तु नही, शुक्र को भी सप्तमेश ही समझना चाहिये क्योकि "भावात्" भावम् के सिद्धान्तानुसार सप्तम से सप्तम अर्थात् लग्न का स्वामी होने के कारण शुक्र पति अथवा विवाह का द्योतक माना जावेगा और उस पर भी सूर्य, शनि तथा केतु का पापप्रभाब माना जायेगा (देखिये नियम १३)। इस प्रकार पीडादायक और पीड़ित ग्रहो का क्षेत्र निश्चत करके फल कहने से सत्यता प्रकट होती है।

(४) बहुधा प्रत्येक ग्रह पर कुछ न कुछ पाप प्रभाव पड जाता है। अत यह बात स्पष्ट ही है किजब कोई ग्रह किसी ऐसे भाव मे स्थित होगा जिस का कि वह कारक है तो वह पाप प्रभाव न केवल विचा-रणीय भाव पर ही होगा बल्कि उस भाव के कारक पर भी होगा ऐसी स्थिति मे उस भाव का पीडित होना और अनिष्ट फलदायक होना स्पष्ट ही है। जैसे पचम भाव अर्थात् पुत्र भाव मे "पुत्र कारक" गुरु पडा हो तो थोडा सा भी पाप प्रभाव जब पचम भाव पर पड़ेगा तो वह गुरु पर भी पडेगा। दूसरे शब्दो मे पुत्रभाव तथा पुत्र कारक दोनो पीडित हो जायेगे। फल, पुत्रप्राप्ति मे बाधा होगा यही कारण है कि ससार मे''कारको भावनाशाय'' की लोकोक्ति प्रचलित है। परन्तु यह लोकोक्ति केवल उसी दशा मे सत्य सिद्ध होगी जिस दशा मे कि भाव तथा कारक पर पाप प्रभाव विद्यमान हो। इसके विपरीत जब

भाव तथा कारक पर शुभ ग्रह की दृष्टि अथवा प्रभाव होगा तो फल बहुत अच्छा निकलेगा, क्योंकि भाव तथा कारक दोनो उस शुभ दृष्टि से लाभान्वित होगे। इस लिये "कारको भावनाशाय" की लोकोक्ति कोई पूर्ण सत्य नही है, इस बात का ध्यान रखना चाहिये।

: १५ :

निजत्व के प्रतिनिधि : लग्नेश, तृतीयेश आदि

व्यक्ति का अपना "निज" अथवा "स्व" लग्न द्वारा निर्दिष्ट होता है। चूँकि मनुष्य का शरीर, जो लग्न द्वारा प्रदर्शित है, अपना अधिकांश कार्य हाथों द्वारा ही सपादित करता है इस लिये कुण्डली में "हाथो" के प्रतिनिधि भाव अर्थात् तृतीय तथा एकादश भाव भी व्यक्ति के निज (Self) को दर्शाते हैं। इसी प्रकार दशम भाव का स्वामी भी "कर्मो" का प्रतिनिधि होने के नाते निज के निर्धारित (Deliberate) स्वतन्त्र कार्यो को दर्शाता है। इस प्रकार निज (Self) का प्रतिनिधित्व करने वाले निम्नलिखित अङ्ग (Factors) हुए :—(क) लग्नाधिपति। (ख) तृतीयाधिपति। (ग) एकादशाधिपति। (घ) दशमाधिपति।

उपर्युक्त "निज" के प्रतिनिधि अङ्गों का प्रभाव जब किसी भाव आदि पर पूर्णरूप से पड़ता है तो मनुष्य का उस भाव-प्रदर्शित व्यक्ति अथवा वस्तु के प्रति व्यवहार जानबूझकर, सोच समझ कर अच्छा या बुरा होता है। उदाहरण के रूप मे, यदि कुंभ लग्न हो और शनि तथा मङ्गल का प्रभाव गुरु पर पड़ रहा हो तो मनुष्य का अपने बड़े भाइयो से घोर विरोध होता है और वह उनको मारने तक के लिये उद्यत हो जाता है। कारण यह कि कुंभ लग्न मे शनि लग्नेश तथा

मङ्गल तृतीयेश होने से "निज" (Self) के प्रतिनिधि बन जाते हैं और इसप्रकार निज की ओर से जानबूझ कर गुरु अर्थात् बडे भाई के साथ (गुरु बड़े भाई का कारक है और कुभ लग्न वालो का लाभेश होने से बडे भाई के स्थान का स्वामी भी है) दुर्व्यवहार करने का योग तथा उसके शरीर को कष्ट पहुँचाने का योग बन जाता है।

इसीप्रकार यदि मगल तथा शनि का बुध तथा पचमभाव पर प्रभाव हुआ तो इस कुण्डली वाला मनुष्य जानबूझ कर अपनी सन्तान का नाश करने वाला होगा क्योकि बुध सन्तान-भाव का स्वामी है। ऐसा योग बहुधा उन लोगो की कुण्डलियो मे आपको देखने को मिलेगा जोकि "**परिवार नियोजन**" के भक्त हैं।

इस नियम का उपयोग करते हुए हम कह सकते हैं कि जब "निज"-द्योतक अगो का प्रभाव सप्तम, सप्तमेश तथा सप्तम कारक पर पडता है तो मनुष्य जान बूझ कर स्वेच्छा की प्रधानता से विवाह करता है। दूसरे शब्दो मे उसका विवाह प्रचलित मर्यादा के अनुकूल माता पिता द्वारा निर्धारित न होकर स्वय उस व्यक्ति द्वारा निर्धारित होता है। इस प्रकार के विवाह को ही **प्रेम विवाह** (Love Marriage) कहते है।

प्रेम विवाह का एक उदाहरण नीचे दिया गया है। यह कुण्डली

कुण्डली स० ४
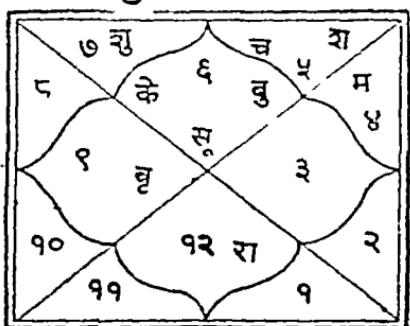
एक लडकी की है जिसने अपने माता पिता की आज्ञा की अवहेलना कर स्वेच्छा पूर्वक अपने लिये पति निर्धारित किया। यहा सूर्य तथा बुध का प्रभाव सप्तम भाव पर पूर्ण दृष्टि द्वारा है। सूर्य, बुध का प्रभाव, गुरु से दशम मे स्थिति के कारण (देखिये नियम पहला) गुरु पर

अर्थात् सप्तमेश तथा सप्तम भाव कारक, दोनो, पर पड़ रहा है। अब चूँकि सूर्य तथा बुध दोनो "निज" (Self) के प्रतिनिधि हैं—सूर्य लग्न रूप होने से तथा बुध लग्नेश, सूर्य लग्न का स्वामी तथा दशमेश होने से। अत निज का प्रभाव विवाह के सब अगों पर पड़ने के कारण विवाह प्रेम विवाह का रूप धारण कर गया।

इसी प्रकार इस नियम का प्रयोग हम "आत्मघात" के विषय में भी कर सकते है क्योंकि आत्मघात भी तो जान बूझ कर अपने द्वारा अपने को मारने ही का तो नाम है।

: १६ :

राहु और केतु की दृष्टि तथा उसका महत्त्व

(१) राहु और केतु की भी दृष्टि होती है और इस दृष्टि का बहुत महत्व है। यदि इन छायाग्रहो की दृष्टि का ध्यान कुण्डली की परीक्षा के समय न रहे तो कई एक दशाओ मे फल वास्तविकता से कोसों-दूर निकलता है। राहु और केतु जिस भाव में स्थित होते है उससे पचम तथा नवम भाव को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं अर्थात् वहा अपना असर या प्रभाव डालते हैं। राहु का प्रभाव शनि की भाँति "पृथक्ता-जनक" "अन्धकारात्मक" "विषैला" "अभावात्मक" "विलम्बात्मक" आदि होता है और केतु का प्रभाव मगल की भाति "क्रूरतापूर्ण" "मारणात्मक" आदि होता है।

(२) उपर्युक्त प्रभाव तब होता है जब राहु और केतु किसी ग्रह के प्रभाव से नही होते परन्तु युति अथवा दृष्टि द्वारा इन छाया-त्मक ग्रहों पर जब कोई प्रभाव रहता है, विशेषतया अशुभ प्रभाव; तो ये ग्रह अपनी दृष्टि में उन ग्रहों का प्रभाव भी रखते हैं और जहाँ पर इनकी दृष्टि हो वहां उस प्रभाव को डालते है; जैसे, राहु तथा मगल दशम भाव में स्थित हों तो उनकी पचम दृष्टि द्वितीय

भाव पर पडेगी और नवम दृष्टि छठे पर। इसी प्रकार इसी स्थिति मे केतु तथा मगल का प्रभाव केतु से पचम तथा नवम अर्थात् अष्टम तथा द्वादश भावो पर पडेगा।

(३) राहु तथा केतु से अधिष्ठित राशि के स्वामी का प्रभाव, युति अथवा दृष्टि द्वारा जहाँ भी पड रहा हो, उस प्रभाव मे राहु अथवा केतु का क्रमश प्रभाव रहता है। अर्थात् राहु-अधिष्ठित राशि का स्वामी शनि की भाँति रोग, पृथक्ता, विलम्ब, अडचन, आदि उत्पन्न करेगा और केतु-अधिष्ठित राशि का स्वामी मगल का प्रतिनिधित्व करता हुआ, अग्नि काण्ड, चोट, चोरी, मारण आदि घटनाओ को घटित करेगा, चाहे इन छायाग्रहो द्वारा अधिष्ठित राशियो के स्वामी नैसर्गिक शुभ ग्रह, गुरु आदि ही क्यो न हो। अत गुरु आदि शुभ ग्रहो की दृष्टि पर विचार करते समय इस बात पर भी विचार कर लेना चाहिये कि कही ये शुभ ग्रह राहु अथवा केतु से अधिष्ठित राशियो के स्वामी तो नही है।

: १७ :

राशिस्थ ग्रह द्वारा राशीश के फल में परिवर्तन

ज्योतिष का साधारण ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी इस सिद्धात से परिचित है कि प्रत्येक राशि के स्वामी मे उसके अपने विशिष्ट गुण-दोष होते है। जैसे—धनु राशि का स्वामी सदा सर्वदा गुरु होता है और गुरु अपने विशिष्ट गुणो के अनुरूप ही कुण्डली मे फल देगा परन्तु हम यह कहना चाहते हैं कि जब किसी ग्रह की राशि किसी दूसरे ग्रह द्वारा अधिकृत होती है तो उस राशि का स्वामी अपना प्रभाव न दिखला कर उस ग्रह का प्रभाव डालेगा कि जो ग्रह उसकी राशि मे स्थित है। उदाहरणार्थ—मान लीजिये कि मगल,धनु राशिमे स्थित है, अब धनु राशि का स्वामी होने के नाते गुरु की दृष्टि मे

शुभता होनी चाहिये थी परन्तु ऐसा नही है, गुरु इस दशा में मगल के प्रभाव को लेकर फल देगा और जहा पर अपनी पचम, सप्तम अथवा नवम दृष्टि डालेगा वहां पर मगल का प्रभाव पड़ रहा है, ऐसा समझा जावेगा।

: १८ :

नीच राशि में नीच ग्रह का राशीश भी अधिक अनिष्ट सूचक

नीच ग्रह जिस राशि में नीच का होकर पड़ा है यदि उस राशि का स्वामी भी नीच राशि मे जा पड़े तो प्रथम नीच ग्रह जिस भाव मे स्थित हो उसको बहुत हानि पहुँचती है। उदाहरणके लिए यदि किसी व्यक्ति के लग्न मे सूर्य नीच काअर्थात् तुला राशि का होकर बैठा हो और नीच राशि तुला का स्वामी शुक्र पुन. द्वादश भाव में कन्या राशि मे नीच होकर स्थित हो तो प्रथम नीच ग्रह सूर्य जिस भाव मे स्थित है उसको अर्थात् लग्न को बहुत हानि पहुँचेगी, इस हानि का अर्थ व्यक्ति की अल्पायु इत्यादि लग्नसबन्धी बातों मे देखने को मिलेगा।

एक और उदाहरण लीजिये। मीन लग्न की कुण्डली में द्वितीय भाव मे मेष राशि में शनि नीच का होकर बैठा है और उस नीच राशि मेष का स्वामी मगल पचम भाव मे पुन नीच होकर स्थित है तो ऐसी स्थिति में द्वितीय स्थान की बातो को हानि पहुँचेगी और चूँकि द्वितीय और पचम मे 'वाणी" एक साझी (Common) बात है, अत इस व्यक्ति की वाणी मे हकलाना, अस्पष्टता आदि कोई न कोई दोष अवश्य होगा।
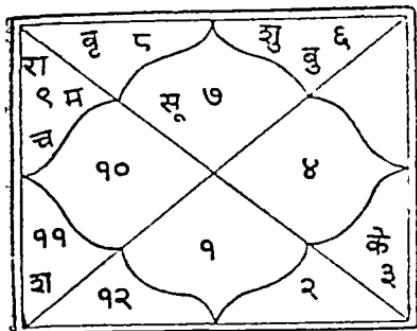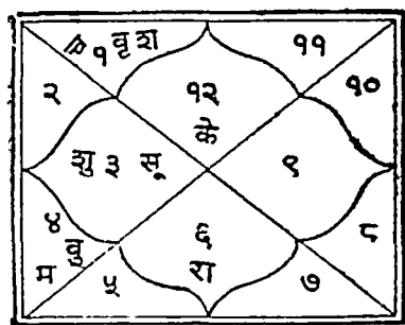
प्रथम उदाहरण श्री सूर्य प्रकाश, सुपुत्र सपादक एस्ट्रोलाजिकल मेगजीन (Astrological Magazine), का है। इस तुला लग्न की कुण्डली मे सूर्य नीच राशि का होकर पड़ा है और शुक्र द्वादश मे नीच, इस होनहार की मृत्यु २७ वर्ष की आयु मे हो गई थी।

कु० स० ६

दूसरी कुण्डली एक ऐसे सज्जन की है जिन की वाणी का शब्द बहुत अस्पष्ट तथा कर्कश सा है। यहा शनि द्वितीय मे नीच है और मेष का स्वामी मगल पचम मे नीच है।

: १ :

अखण्ड साम्राज्य योग

परिभाषा—लाभेश, धर्मेश (नवम भाव का स्वामी), तथा धनेश—इन मे से कोई एक भी ग्रह यदि चन्द्र लग्न से (अथवा लग्न से) केन्द्र स्थान मे स्थित हो और साथ ही यदि गुरु भी द्वितीय, प चम अथवा एकादश भाव का स्वामी होकर उसी प्रकार केन्द्र मे स्थित हो तो "अखण्ड साम्राज्य" नाम के योग की सृष्टि होती है।

फल—यह योग स्थायी साम्राज्य तथा धनादि प्रदान करने वाला महान् योग है।

हेतु—यह योग धनेश, नवमेश, लाभेश तथा एक विशिष्ट प्रकार के गुरु द्वारा बना है। धनेश पर जब हम विचार करते है तो 'सर्वार्थ-चिन्तामणि-कार" का द्वितीय भाव सबन्धी यह श्लोक सामने आ जाता है कि :—

स्वोच्चे सुहृद्भे स्वगृहे तदीशे,
सिंहासने तद् भवनेश्वरे वा ।
पारावतांशे गुरुदृष्टियुक्ते,
शतत्रय शास्ति च जातपुण्य ॥ ३-२२ ॥

अर्थात्—यदि द्वितीय भाव का स्वामी अपनी उच्च राशि, निज राशि अथवा मित्र राशि मे स्थित हो अथवा पारावतांश आदि शुभ वर्ग में स्थित हो तो सैकड़ों पर शासन करता है।

इस प्रकार "सर्वार्थ चिन्तामणि-कार" ने स्पष्ट शब्दों मे द्वितीय भाव का सबन्ध शासन शक्ति से बतलाया है और कहा है—

स्वोच्चस्थिते वित्तवपतौ च केन्द्रे,

सिंहासनप्राप्तिमुदाहरन्ति (४-१६६)

अर्थात्—द्वितीय भाव का स्वामी यदि उच्च राशि मे होकर केन्द्र मे स्थित हो तो राज्य की प्राप्ति होती है।

तात्पर्य यह है कि द्वितीय स्थान का शासन से घनिष्ठ सबन्ध है और द्वितीयेश का केन्द्रादि मे स्थित होकर बलवान् होना राज्य की प्राप्ति करवाता है।

इस प्रकार जब हम नवमेश पर विचार करते हैं तो एक ऐसे सर्वोत्तम शुभ ग्रह पर विचार करते हैं जो भाग्य का प्रतिनिधि होने से समस्त राज्य, बल, धन आदि की खान है। अतः भाग्याधिपति

का केन्द्र मे बलवान् होकर स्थित होना यदि राज्य दे तो अतिशयोक्ति नही । इसके अतिरिक्त नवम भाव "राज्यकृपा" का भाव भी माना गया है, अत नवम भाव के स्वामी के बली होने से राज्य कृपा की प्राप्ति अथवा राज्यप्राप्ति का होना युक्तियुक्त है। इसी प्रकार लाभाधिपिति भी हर प्रकार के लाभ का द्योतक है उसका बली होना भी हर प्रकार के लाभ का सूचक है। रह गया गुरु, सो वह तो धन-कारक तथा राज्य कृपा-कारक ग्रह है ही। जब वह धन अथवा लाभ का स्वामी बनेगा तो धन तथा राज्य-कृपा का और भी अधिक बली प्रतिनिधि बन जावेगा। ऐसे मूल्यवान् ग्रह का केन्द्र मे स्थित होना लग्न अथवा चन्द्र को भी धन तथा राज्यप्रद शुभता का देने वाला होगा क्योकि जैसा हम आधार नियम संख्या एक मे लिख आये है, केन्द्रस्थित ग्रह का लग्न पर प्रभाव पडता है। इस प्रकार धन, ऐश्वर्य, राज्य, लाभ सब का लग्नो पर प्रभाव लग्न को अर्थात् "निज" को साम्राज्य रूप मे इन सद्गुणों की प्रचुरता दे दे तो आश्चर्य नही मानना चाहिये।

कु० स० ७
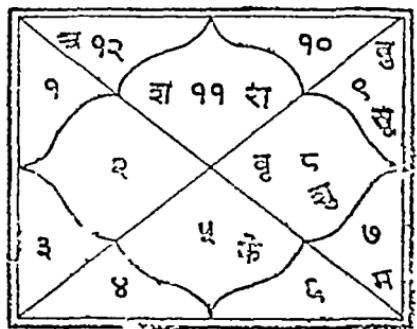
उदाहरण (१) यह कुण्डली पाकिस्तान के कायदे आजम मुहम्मद अली जिन्ना की है। देखिये गुरु, यहा लाभेश, धनेश होकर प्रमुख दशम केन्द्र मे है और भाग्येश शुक्र भी उसी प्रमुख केन्द्र मे है। ये दोनो न केवल लग्न से प्रमुख केन्द्र मे है अपितु लग्नेश से भी है। अत साम्राज्य, धन, सबका सुख लग्न को पहुँच रहा है। गुरु, शुक्र पर पापमध्यत्व के कारण इस योग का फल उनको देर से प्राप्त हुआ परन्तु राज्य की प्राप्ति अवश्य हुई।

कु० सं० ८

अखण्ड साम्राज्य का एक और उदाहरण रूस के भूत पूर्व डिक्टेटर जोजफ स्तालिनकी कुण्डली उपस्थित करती है। इस कुण्डली मे एकादशाधिपति बुध लग्न से केन्द्र में तथा द्वितीयाधिपति पचमाधिपति गुरु भी लग्न से केन्द्र में स्थित है। इस प्रकार बुध और गुरु इस योग की शर्तें पूरी करते हैं।
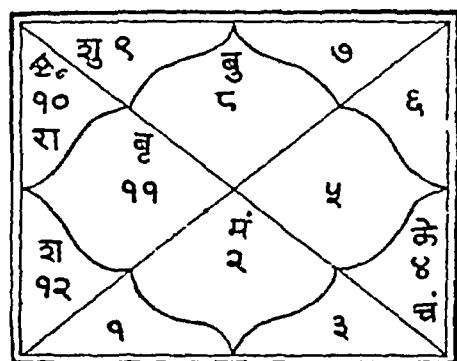
: २ :

अग्निकांड-योग

परिभाषा—किसी ऐसे ग्रह आदि पर, जो किसी व्यक्ति का पूरा प्रतिनिधित्व करता हो, यदि अग्निद्योतक ग्रहों—लग्नेश, पंचमेश, नवमेश—का प्रभाव हो तो मनुष्य को अग्नि लग जाने का भय होता है।

हेतु और फल—अग्नि के द्योतक ग्रह मङ्गल, सूर्य तथा केतु है। इन ग्रहों से अधिष्ठित राशियों के स्वामी भी अग्नि रूप ही है। इसी प्रकार कुण्डली में प्रथम, पंचम तथा नवम भाव "अग्नि" तत्व के भाव है; अतः लग्नेश, पंचमेश तथा नवमेश अपने में अग्नि का प्रभाव रखते है। इन तीनो भावो के स्वामी यदि नैसर्गिक जलीय ग्रह शुक्र, चन्द्र भी हो तो भी अग्नि ही के द्योतक समझने चाहिये। हाँ, यदि इन भावों मे जलीय ग्रह बैठा हो तो जलीय ग्रह से अधिष्ठित राशि का स्वामी जलीय प्रभाव करेगा, अग्निप्रभाव नही करेगा। अतः जब लग्न, पचम, नवम भावो में कोई ग्रह न हो अथवा इनमे कोई अग्नि-द्योतक ग्रह बैठे हों तो इन भावों के स्वामी जिस भाव, भावपति

तथा भाव कारक पर अपना प्रभाव डालेंगे उसे आग लगा देंगे।

शास्त्रोक्ति—रन्ध्रागपौ वाहननाथयुक्तौ।
तस्मान्मृति तस्य वदन्ति तज्ज्ञा ॥
(सवार्थचितामणि ७-२८)

(ii) शिखिजलशस्त्रज्वरजस्त्वामयतृट्।
क्षुत्कृतो भवेन्मृत्यु। सूर्यादिभिर्निधनगै
परदेशे पार्थिस्वके चराधैश्च चराद्यैश्च।
सारावली (४६-१)

(iii) यो बलयुक्तो निधन पश्यति
तद्धातुकोपजो मृत्यु ॥ (सारावली ४६-२)

उदाहरण—(1) इस व्यक्ति की स्त्री के कपडो तथा शरीर को आग लग गई थी। यहा लग्नेश स्वय अग्नि रूप मगल है, पचमाधिपति भी अग्निरूप सूर्य है। सूर्य मे वायु का प्रभाव हैं। क्योकि सूर्य, शनि-अधिष्ठित राशि का स्वामी है। गुरु नवमाधिपति होनेके कारण अग्निरूप है। अब इन तीनो ग्रहो-मगल, सूर्य, गुरु का सप्तम भाव, सप्तमेश तथा सप्तमकारक शुक्र—सभी पर प्रभाव है, क्योकि मगल और सूर्य तो शुक्र पर मध्यत्व बना रहे है और गुरु का शुक्र पर केन्द्रिय प्रभाव है; अत स्त्री का आग की लपेट मे आना प्रमाणित होता है।
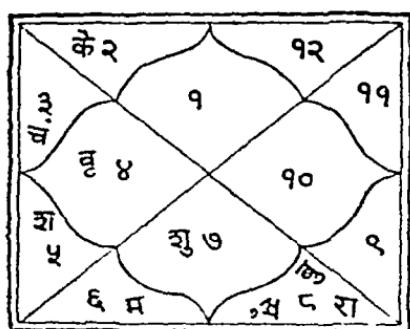
कु० स० ९

उदाहरण—(ii) यह दूसरा उदाहरण इस बात को स्पष्ट करने के लिए दिया जा रहा है कि यद्यपि द्वादश भाव "जलीय" भाव है परन्तु यदि इस भाव मे "अग्नि" ग्रह स्थित हो तो द्वादशेश अपने मे

कु० सं० १०

आग का प्रभाव रखेगा, न कि जल का। देखिए इस कुण्डली के द्वादश भाव मे तीन "अग्नि" द्योतक ग्रह स्थित है। अर्थात् मगल, सूर्य, तथा इनसे मिलकर इन्ही का रूप बुध।

इसलिये द्वादशेश शनि एक महान् अग्निद्योतक ग्रह समझा जावेगा न कि जलीय। अब देखिये शनि की ओर। शनि की दृष्टि चार ऐसे अगो पर है जिनमे से प्रत्येक मृत्यु के कारण देखने में उपयुक्त है। वे चार अग है। (i) लग्न, (ii) लग्नेश, (iii) अष्टम भाव, (iv) अष्टम भाव का स्वामी। अत. स्पष्ट है कि अपने इस पूर्ण व्यापक प्रभाव के कारण शनि मृत्यु के कारण को दर्शायेगा। शनि जैसा कि हम अध्ययन कर चुके है, अग्निरूप ही है। अतः इस व्यक्ति की मृत्यु का आग द्वारा होना सिद्ध हुआ।

: ३ :

अग्रज-घातक योग

परिभाषा—जब लग्नाधिपति, तृतीयाधिपति अथवा लग्नाधिपति एकादशाधिपति दोनो नैसर्गिक पापी ग्रह हों और दोनों का प्रभाव एकादशेश गुरु पर पड रहा हो तो "अग्रज-घातक" योग होता है।

फल—इस योग में उत्पन्न होने वाला मनुष्य, यदि उसके बडे भाई हों तो, उन से विरोध रखने बाला होता है और उनको मरवाने तक से नही हिचकिचाता।

हेतु—लग्नेश तथा तृतीयेश तथा एकादशेश व्यक्ति के निज (Self) के प्रतिनिधि है। अतः जहा कही भी यह पापी प्रभाव पड़ेगा उस व्यक्ति आदि का विरोध मनुष्य जानबूझकर (Deliber-

ately) करेगा और यदि यह प्रभाव बड़े भाई के लग्नेश तथा बड़े भाई के कारक गुरु पर पड़ जाये तो स्पष्ट है कि वह मनुष्य अपने अग्रजो का जान बूझकर विरोधी अथवा शत्रु होगा।
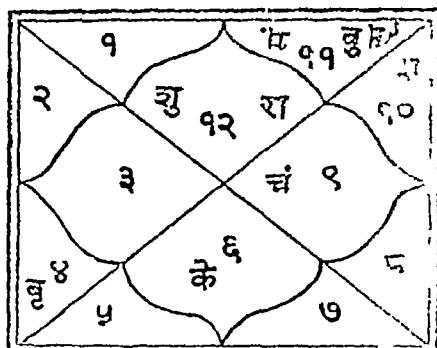
उदाहरण—यह कुण्डली औरगजेब बादशाह की है। यहाँ शनि अपनी पूर्ण दशम दृष्टि से और मगल अपनी पूर्ण सप्तम दृष्टि से गुरु को पीडित कर रहे हैं और गुरु यहा, न केवल एकादश भाव का स्वामी (अग्रज) ही है अपितु बडे भाइयो का कारक भी है। अतः शनि और मगल लग्नेश (निज) तथा तृतीयेश (बाहु) होने के कारण जान बूझकर हानि पहुँचाने की भावना तथा कार्य को दर्शाते हैं। अतः इसी पाप प्रभाव के कारण औरगजेब ने चतुराई से अपने बडे भाइयों को मरवा दिया। गुरु ही के सबन्ध मे एक और बात इस कुण्डली मे नोट करने योग्य है। वह यह कि गुरु एकादशेश है अर्थात् पचम भाव (पुत्री) से सप्तम (पुत्री का विवाह) भाव का स्वामी है और इसीलिये पुत्री के पति का पक्का प्रतिनिधित्व करता है। शनि तथा मंगल का ऐसी स्थिति को प्राप्त होकर गुरु पर इस प्रकार का सोचा समझा पापी प्रभाव यह भी दर्शाता है कि वादशाह की पुत्री के विवाह न होने का कारण स्वय बादशाह की इच्छा ही थी।

कुं० सं० ११

१२ | रा १० | १ | ११ बृ | ९ शु | श २ च | ८ | सू ७ बु | ३ | ५ म | ४ के | ६

: ४ :

अमला-योग

परिभाषा—जब लग्न अथवा चन्द्र से दशम स्थान मे शुभ ग्रह की स्थिति हो तो "अमला-योग" बनता है।
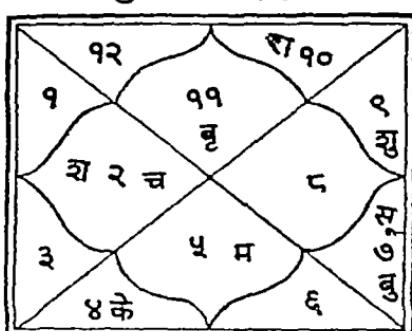
फल—अमला-योग में जन्म लेने वाला मनुष्य निर्मल कीर्ति वाला, तथा स्थायी धनवान् होता है।

हेतु—हम "आधार" नियम संख्या १ में इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि ग्रहों की केन्द्रस्थिति द्वारा उनका प्रभाव लग्न पर पड़ता है। यह प्रभाव यदि शुभ है तो लग्न शुभ फल देती है और यदि यह अशुभ है तो लग्न अशुभ फल देती है। हम आधार नियम संख्या पाँच में यह भी उल्लेख कर चुके है कि लग्न की स्थिति से धन की स्थिति देखी जाती है। साथ ही ज्योतिष के विद्यार्थी यह बात भी जानते है कि केन्द्रो में मुख्य केन्द्र दशम केन्द्र है। अर्थात् इस केन्द्र मे स्थित ग्रह जहां खूब बल पाता है वहाँ वह लग्न पर भी दूसरी स्थिति (चतुर्थ स्थिति) की अपेक्षा अधिक प्रभाव डालता है। अत स्पष्ट है कि जब कोई शुभ ग्रह दशम केन्द्र मे स्थित होगा वह बलवान् होकर लग्न पर अपना शुभ प्रभाव डालेगा जिसके फलस्वरूप लग्न, प्रदर्शित गुण-जैसे धन, स्वास्थ्य आदि, वृद्धि को प्राप्त होंगे।

इसी प्रकार हम यह भी जानते है कि कुण्डली में यदि "यश" अथवा कीर्ति अथवा "मान" का विचार करना हो तो लग्न और दशम दोनों भावो से करना चाहिये क्योकि ये दोनों के दोनो भाव "मान" के भाव है। अत. यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिये कि शुभ ग्रह की दशम भाव में स्थिति दशम तथा लग्न दोनों को, चूँकि, शुभ तथा बलवान् बनाती है, अतः, दोनो के साँझे (Common) गुण "यश" को अवश्य बढ़ाने वाली होगी।

शस्त्रोक्ति—(१) "यस्य जन्मसमये शशिलग्नात्,
सद्ग्रहो यदि च कर्मणि संस्थ.।
तस्य कीर्तिरमला भुवि तिष्ठेदा,
युगोऽन्तमविनाशनसपत्" (जा. पा.७-११८)

अर्थात्—जिस मनुष्य के जन्म समय में चन्द्र लग्न से दशम भाव

मे शुभ ग्रह स्थित हो उसकी कीर्ति निर्मला होकर आयुपर्यन्त रहती है और वह मनुष्य स्थायी सपत्ति वाला होता है।

(२) **लग्नाद्वा चन्द्रलग्नाद्वा दशमे शुभसयुते।**
योगोऽयम् अमला नाम कीर्तिराचन्द्रतारकी ॥
(जा० पा० ७-११६)

अर्थात्—लग्न से अथवा चन्द्र लग्न से दशम में जिस मनुष्य का शुभ ग्रह स्थित हो उसकी उज्ज्वल कीर्ति सदा-सदा के लिये बनी रहती है।

(३) **"चन्द्राद् व्योम्नि अमल आह्वय**
शुभखगै र्योगो विलग्नादपि" (फलदीपिका)

अर्थात्—लग्न अथवा चन्द्र से दशम मे शुभ ग्रहो के होने से "अमला" नाम का योग होता है।

क्ष्मेश स्यादमले धनी सुतयश सपत्युतो नीतिमान् (फलदीपिका)

अर्थात्—"अमला" योग मे उत्पन्न हुआ व्यक्ति पृथ्वीपति, धनवान्, पुत्र, यश तथा सपत्ति से युक्त तथा नीतिमान् होता है।

उदाहरण—यह कुण्डली प्रसिद्ध अभिनेता अशोक कुमार की है।

कु० स० १२

११ ९ १२ ८ १० ७ १ के बृ श रा सू २ ६ ४ बु मं ३ च ५ शु
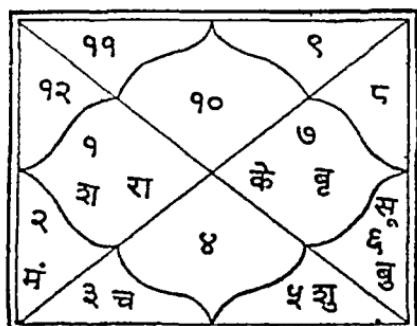
यहाँ एक शुभ ग्रह गुरु लग्न से दशम मे स्थित होकर दशम भाव तथा लग्न भाव दोनो को बल्कि लग्नाधिपति को भी प्रभावित एव लाभान्वित कर रहा है। अत दशम तथा लग्न प्रदिष्ट गुण "ख्याति", धन आदि की सृष्टि कर रहा है।

: ५ :

अधियोग

परिभाषा—जब शुभ ग्रह लग्नादि से षष्ठ, सप्तम तथा अष्टम स्थान मे स्थित होते है तो 'लग्नादि' "अधि" योग' की सृष्टि होती है। यदि यह शुभ ग्रह लग्नसे षष्ठ, सप्तम, अष्टम हो तो "लग्नाधियोग" होता है। यदि शुभ ग्रहो की स्थिति चन्द्र से हो तो "चन्द्राधियोग" बनता है। हम इस नियम को सर्वत्र अपना सकते है अत जब शुभ ग्रहो की उक्त प्रकार की स्थिति सूर्य से हो तो "सूर्यलग्नाधियोग" का निर्माण होना समझना चाहिये। नीचे "शास्त्रोक्ति" भी देखिये।

फल—"अधियोग" से विशेष धन की प्राप्ति होती है तथा अन्य कई शुभ प्राप्तिया भी होती है।

हेतु—जब लग्न से शुभ ग्रह छठे, सातवे तथा आठवे स्थित होगे तो एक बात तो निर्विवाद सिद्ध है कि लग्न पर सप्तमस्थ शुभ दृष्टि द्वारा लग्न को बल तथा लाभ पहुँचेगा। रह गई बात उन शुभ ग्रहो की जोकि लग्न से छठे तथा आठवे स्थित है। उनके सबन्ध मे हम नियम सख्या सात मे स्पष्ट कर चुके है कि षष्ठस्थ ग्रह की लग्न से द्वादश स्थान पर शुभ दृष्टि के कारण तथा अष्टमस्थ ग्रह की लग्न से द्वितीय स्थान पर शुभदृष्टि के कारण लग्न के आस-पास शुभप्रभाव के कारण, एक प्रकार का शुभ मध्यत्व भी प्राप्त होगा। इस प्रकार लग्न न केवल शुभदृष्ट ही होगा बल्कि शुभमध्यत्व का फल भी देगा। अत लग्न अपने संवन्ध रखने वाली सव वाते जैसे धन, यश, स्वास्थ्य, आयु आदि मनुष्य को प्रदान करेगा। यही हेतु "चन्द्राधियोग" में भी जहा, चन्द्र से छठे, आठवे तथा सप्तम मे शुभ ग्रह होते है समझ लेना चाहिये और इसी ऊहापोह को "सूर्यलग्नाधि-

योग" में भी लागू कर लेना चाहिये। लग्न, सूर्यलग्न, चन्द्रलग्न में से जितने अधिक लग्नो पर "अधियोग" बनेगा मनुष्य उतना ही अधिक समृद्ध तथा धनिक बनता चला जावेगा।

शास्त्रोक्ति—

(१) "ख्यातः स्यादधियोगजातमनुज श्रीमान् प्रसिद्धो महान्,
अश्वान्दोलकवाहनादिविभवै र्नित्यं श्रियो मन्दिरे।
सत्पुत्रादिकलत्रभाग्यसहितः चन्द्रेशतुल्यो महान्,
कीर्तिप्रभावसाहसयुतो देशान्तरे कीर्तिमान्॥

(देवकेरल)

अर्थात्—"अधि" योग मे उत्पन्न होने वाला मनुष्य विख्यात, धनी, यशस्वी होता है और घोडे, पालकी तथा अन्य वाहन आदि, तथा श्री से सयुक्त, सुशील पुत्रो वाला, सुशीला स्त्री वाला, भाग्यवान्, महान् कीर्ति प्रभाव, साहस वाला तथा देशदेशान्तर मे यशस्वी होता है।

सूचना—ये सभी सद्गुण लग्न अथवा चन्द्र लग्न पर शुभ गुण के प्रभाव का फल है। लग्न चूंकि पुत्र का भाग्य तथा धर्म का स्थान होता है, अत वहाँ शुभ ग्रह की स्थिति पुत्रो को धार्मिक तथा भाग्यशाली बनाती ही है। इस प्रकार लग्नस्थ शुभ ग्रह की सप्तम पर शुभ दृष्टि के कारण सुशीला स्त्री की प्राप्ति कही है।

(२) "लग्नादरिद्यू न गृहाष्टमस्थै शुभै न पापग्रहयोगदृष्टै।
लग्नाधियोगोऽभवति प्रसिद्ध पापः सुखस्थानविवर्जितैश्च॥

(जा. पारि ७-११४)

अर्थात्—लग्न से छठे, सातवे, तथा आठवें शुभ ग्रहो की स्थिति हो और वह शुभ ग्रह न तो किसी पाप ग्रह से युक्त हो न दृष्ट और साथ ही चतुर्थ स्थान मे भी पापी ग्रह न हों तो प्रसिद्ध "लग्नाधि"-योग बनता है।

सूचना—'जातक पारिजात' मे उपर्युक्त साधारण परिभाषा

के अतिरिक्त दो बातों का और उल्लेख किया है। एक तो यह कि जो शुभ ग्रह लग्न से षष्ठ, सप्तम, तथा अष्ठम स्थान मे स्थित हों वे पापप्रभाव में नही होने चाहिये और दूसरी यह कि चतुर्थ भाव पर भी पाप प्रभाव नही होना चाहिये। दोनों बाते युक्तियुक्त है; अतः हम इन से सहमत है क्योकि लग्न पर शुभ प्रभाव डालने वाले शुभ ग्रह यदि स्वयं पाप प्रभाव में होने के कारण निर्बल हो गये तो लग्न को शुभता की प्राप्ति न हो पायेगी। अत "अधि" योग खण्डित हो जायेगा। चतुर्थ भाव के पाप प्रभाव से रहित होने का तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्य को "सुख" में हानि की सभावना न रही।

(३) "लग्नाधियोगे बहुशास्त्रकर्ता विद्याविनीतश्च बलाधिकारी।
मुख्यस्तु निष्कापटिको महात्मा लोके यशोवित्तगुणान्वित. स्यात् ॥

(जा. पारि ७-११५)

अर्थात्—"लग्नाधि-योग" मे उत्पन्न मनुष्य बहुत शास्त्रो का कर्ता, विद्यासंपन्न तथा नम्र, राज्य का अधिकार पाने वाला, मुख्य व्यक्ति, सरल, महान् आतमा, संसार मे यश, धन, तथा सद्गुणों से युक्त होता है।

चन्द्राधियोग—

(४) "षष्ठं द्यूनमथाष्टमं शिशिरगोः प्राप्ताः समस्ता. शुभा.,
क्रूराणां यदि गोचरे न पतिता भान्वालयाद् दूरत।
भूपाल. प्रभवेत् सः यस्य जलधे र्वेलावनान्तो.द्भवैः,
सेनामत्तकरीन्द्रदानसलिलं भृंगै र्मुहुः पीयते ॥

(सारावली ३५-२२)

अर्थात्—यदि चन्द्र से छठे, सातवे, तथा आठवे स्थान मे सव शुभ ग्रह स्थित हों और उन पर कोई पाप ग्रहों का प्रभाव न हो और सूर्य से भी दूर हो तो मनुष्य राजाओं का भी राजा अर्थात् बहुत धनवान्, वलवान्, ऐश्वर्यवान् होता है।

सूचना—सारावलीकार ने एक और शर्त यह लगादी कि शुभ

ग्रह जो चन्द्र आदि से षष्ठ, सप्तम तथा अष्टम मे स्थित हो सूर्य के समीप न हो। स्मरण रहे कि सूर्य के सान्निध्य से ग्रह दो प्रकार से निर्बल हो जाते है। अत अपनी शुभता को वह चन्द्र आदि पर न डाल सकेंगे। एक तो सूर्य के समीप आया हुआ ग्रह अस्त होकर अपनी प्रभा शक्ति को खो बैठता है। दूसरे जब कोई ग्रह सूर्य के समीप आता है तो सूर्य के महात् आकर्षण के कारण वह अपनी नैसर्गिक चाल खोकर "अतिचारी" हो जाता है अर्थात् निर्बल हो जाता है अत वह भी चन्द्र आदि को शुभता प्रदान करने के असमर्थ हो जाता है ग्रह जितना सूर्य से दूर होता है उतना बलवान् होता है। "वक्री" ग्रह होता है, अत विशेष बली होता है।

(५) **स्यादधियोगे जात सौम्यै सबलै धराधीश ।**
मध्यबलै मन्त्री स्यादधमबलै सैन्यनायक स्यात् ॥

(वादरायण)

अर्थात्—"अधियोग" मे उत्पन्न व्यक्ति यदि उसके षष्ठ, सप्तम तथा अष्टम मे स्थित शुभ ग्रह बलवान् है तो राजा, मध्य बली है तो मन्त्री और थोडा बली है तो सेना का नायक होता है।

उदाहरण—यहाँ चन्द्र से छठे, सातवे तथा आठवे क्रमश शुक्र, गुरु तथा बुध शुभ ग्रह बैठे हैं। अत चन्द्राधि योग बन रहा है। यह चन्द्राधि योग अच्छा है परन्तु सूर्य यदि सप्तम मे न होता, इन तीन भावो से दूर होता तो और भी अधिक शुभ फल देता। अस्तु फिर भी इस मिलिटरी के जेनरल को हजारो मासिक वेतन के अतिरिक्त सम्पत्ति से भी सहस्रो की आय थी।
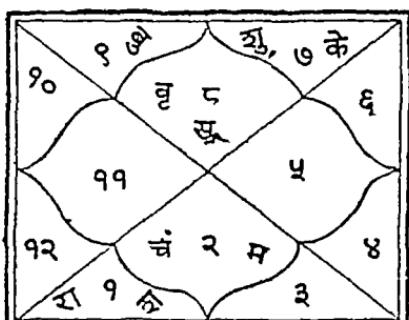
कु० स० १३

कु० स० १४

दूसरा उदाहरण छत्रपति शिवाजी का है। यहाँ चन्द्र से छठे, गुरु, सातवे बुध, आठवे शुक्र बैठा है जिससे चन्द्राधियोग की सृष्टि हो रही है।

चन्द्राधियोग बहुत कम लोगों की कुण्डलियो मे देखने को मिलता है। इसी कारण से इसका मूल्य और भी अधिक हो जाता है।

कु० स० १५

एक और उदाहरण चन्द्राधियोग का दिया जा रहा है। यहाँ चन्द्र से शुक्र छठे, बुध सातवे तथा गुरु आठवे है। बल्कि यह शुभ ग्रहो की छठे, सातवे और आठवे स्थिति न केवल चन्द्र से है लग्न से भी है। अर्थात् यह "लग्नाधियोग" भी है। इस योग की कृपा से यह व्यक्ति सारी आयु समृद्धि और विलास से खेलता रहा।

: ६ :

आत्मघात योग

परिभाषा—जब मरण विधि 'द्योतक लग्न' लग्नाधिपति, अष्टम, अष्टमाधिपति पर "निज" (Self) द्योतक अंगों-लग्नेश, तृतीयेश, एकादशेश, सूर्य, चन्द्र आदि का प्रभाव हो तो मनुष्य आत्मघात से मृत्यु को प्राप्त होता है।

हेतु—आत्मघात की परिभाषा ही यह है कि मृत्यु का कारण मनुष्य स्वयम् हो। अत. मृत्यु स्थान आदि पर "स्वय" के प्रतिनिधि
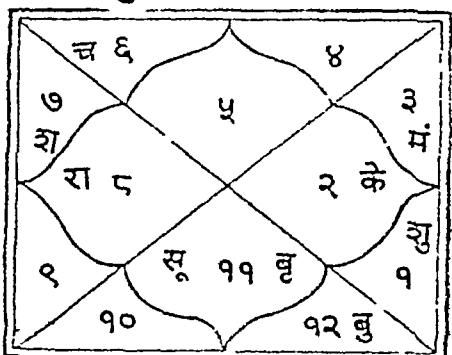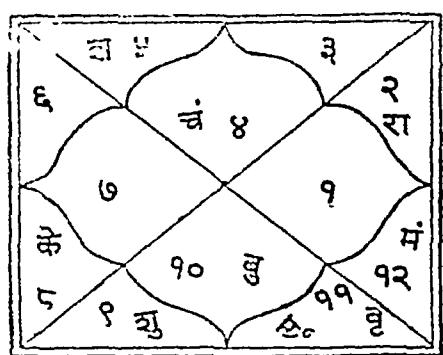
ग्रहो का प्रभाव आदि आत्मघात (Suicide) का योग उत्पन्न कर दे तो आश्चर्य क्या है ?

शास्त्रोक्ति—आयुर्विलग्नाधिपती बलेन,

हीनौ धरा सूनु व्रणेश युक्तौ

युद्धे मृतिस्तस्यवदन्ति तज्ज्ञा (सर्वार्थ, चिन्तामणि ७-२६) ॥

अर्थात्—यदि किसी कुण्डली मे अष्टमाधिपति तथा लग्न का पति बल से हीन होकर, मगल तथा षष्टेश दोनो से युक्त हो तो मनुष्य की मृत्यु युद्ध मे होती है अर्थात् आघात से होती है। स्मरण रहे मंगल और षष्ठेश दोनो आघात के ग्रह है।

उदाहरण—इस व्यक्ति की मृत्यु जल मे डूबकर हुई। यहाँ तृतीयेश अष्टम स्थान मे हैं और अष्टमेश तृतीय स्थान में। यह व्यत्यय (Exchange) निज हाथो (arms-तृतीय भाव) को मृत्यु का कारण जतला रहा है। यह विचार तो लग्न तथा सूर्य लग्न से हुआ। यदि चन्द्र लग्न से भी विचार किया जावे तो आप देखेगे कि उस लग्न से तृतीय भाव का स्वामी शनि है जिसकी दृष्टि चन्द्र लग्न पर भी है और चन्द्र लग्न से आठवे भाव पर भी है बल्कि चन्द्र लग्न से अष्टमेश बुध पर भी है। अत शनि भी निज हाथो द्वारा अर्थात् जान बूझ कर मृत्यु को प्राप्त होना दिखा रहा है। अष्टमेश एक जलीय ग्रह है गुरु जो अष्टम स्थान मे है वह भी शुक्र-अधिष्ठित राशि का स्वामी होने से जलीय ग्रह ही माना जावेगा। चन्द्र जो अष्टम भाव पर दृष्टि डाले हुए है जलीय ग्रह है ही। बुध भी चन्द्र के साथ होने से जलीय हो चुका है। इस प्रकार अष्टम भाव पर जलीय प्रभाव द्वारा मृत्यु को दरशा रहा है।
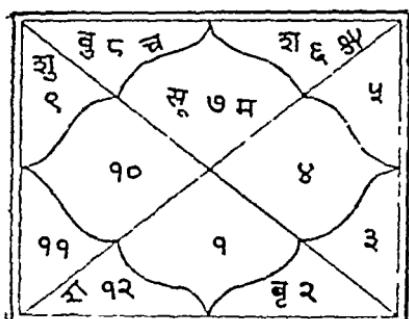
कु० स० १६

: ७ :

उन्माद (पागलपन) योग

परिभाषा—जब बुद्धि तथा मन के द्योतक सभी अगों पर पापी ग्रहों का प्रभाव पाया जाये तो उन्माद योग की सृष्टि होती है।

हेतु—बुद्धि के द्योतक अंग हैं (i) लग्न (ii) लग्नाधिपति (iii) बुध (iv) पंचम भाव (v) पचमेश और मन (Emotions) के द्योतक अंग हैं (i) चतुर्थ भाव (ii) चतुर्थ भाव का स्वामी (iii) चन्द्र। इस प्रकार बुद्धि तथा मन के आठ प्रतिनिधि हुए। जब इन आठो के आठों अगों पर पापी ग्रहों का प्रभाव पाया जावे तो मनुष्य उन्मादी (पागल) हो जाता है।

शास्त्रोक्ति—शशाँकतत्पुत्नविलग्ननाथाः
सराहवः केतुयुताश्च यत्न ।
वैश्यं तु कुष्ठ मुनयो वदन्ति,
शुभेक्षितस्तत्न न भवेत्तदानीम् ॥

अर्थात् चन्द्र और चन्द्रका पुत्र अर्थात् बुध और लग्न का स्वामी यदि लग्न मे राहु, केतु से युक्त हो तो मुनि लोग "वैश्य" नाम के कुष्ठ की और निर्देश करते हैं। परन्तु यदि यह ग्रह शुभदृष्ट हो तो कुष्ठ का रोग नहीं होता अर्थात् तब यह योग खण्डित हो जाता है।

उदाहरण—यह एक सज्जन की कुण्डली है जो अपनी पत्नी के व्यभिचार के कारण पागल हो गया। यहां (i) लग्न पर सूर्य तथा मङ्गल का पापी प्रभाव (ii) लग्नेश बुध पर छठे घर मङ्गल-शनि-सूर्य तथा राहु का पापी प्रभाव (iii) बुध पर पापी

कु० सं० १७
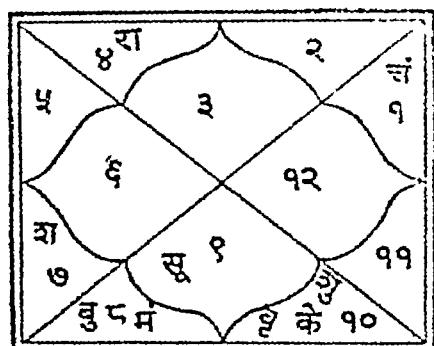
(iv) प्रभाव चतुर्थ भाव पर केतु की दृष्टि (देखिये ii) (v) चतुर्थेश बुध पाप प्रभाव मे (देखिये ii) (vi) पचम भाव पर राहु शनि का प्रभाव—(vii) पचमेश शुक्र पर सूर्य, मङ्गल शनि, राहु आदि का मध्यत्व प्रभाव (viii) चन्द्र पर शनि का प्रभाव है। इस प्रकार आठो अगो पर पाप प्रभाव होने से उन्माद सिद्ध हो रहा है।

: ८ :

उभयचरी योग

परिभाषा—सूर्य से द्वादश तथा द्वितीय स्थान मे स्थित ग्रहो का नाम "उभयचरी" है। जब ये ग्रह नैसर्गिक पापी हो तो पाप "उभयचरी" और यदि नैसर्गिक शुभ हो तो शुभ "उभयचरी" कहलाते हैं। उभय का अर्थ 'दोनो ओर" है।

फल—"पाप" उभयचरी का फल यह है कि इसके कारण मनुष्य रोग ग्रस्त, दरिद्री, अस्वतन्त्र कर्म करने वाला होता है। और शुभ उभयचरी ग्रह मनुष्य को राजा तुल्य धनी, एश्वर्यशाली, बलवान् सुखी सुशील, दयावान् बनाते है।

हेतु—जैसा कि हम बहुधा कह चुके हैं "सूर्य" भी लग्न की भाति कार्य करता है और लग्न ही की भाँति शुभ अथवा अशुभ फल के देने वाला होता है। यदि सूर्य पर शुभ प्रभाव पडे तो जातक सूर्य लग्न की शुभता के कारण राज्य, वल, यश, धन, सुख पाता है, और इस के विपरीत यदि सूर्य पर पापी ग्रहो का प्रभाव हो तो दुख, दरिद्र, अपयश, अस्वतन्त्रता, रोग आदि अनिष्ट पदार्थो की प्राप्ति होती है जो कि लग्न के विरोधी दोषो की ही प्राप्ति है। अब उभयचरी योग मे ग्रहो की स्थिति सूर्य से द्वितीय तथा द्वादश होती है जिस से यदि वे ग्रह शुभ हुए तो शुभ "उभयचरी" अथवा शुभ मध्यत्व का फल निकलता है और यदि सूर्य से द्वितीय द्वादश पाप ग्रह हुए तो सूर्य पर

पाप मध्यत्व के कारण सूर्य लग्न से विरोधी अर्थात् पाप फल दुख दरिद्र, रोग आदि निकलता है।

शास्त्रोक्ति —"सूर्याद्व्ययगै वाशि द्वितीयगैश्चन्द्रवर्जितैर्वेशि,
उभयस्थितै ग्रहेन्द्रै रुभयचरी नामत. प्रोक्ता ॥
(सारावली ४-१.)

अर्थात् सूर्य से द्वादश स्थान पर कोई ग्रह स्थित हो तो "वाशि" नाम का योग बनता है और सूर्य से द्वितीय मे चन्द्र को छोड़कर और कोई ग्रह स्थित हो तो "वेशि" नाम का योग बनता है। और यदि सूर्य के दोनो ओर अर्थात् द्वितीय तथा द्वादश मे ग्रह हो शुभ हों अथवा अशुभ हों तो उभयचरी योग बनता है।

सौम्यान्वितोभयचरि प्रभवा नरेन्द्रा
स्तत्तुल्यवित्त सुख शील दयानुरक्ता ।
पापान्वितोभयचरौयदि पाप कृत्या,
रोगाभिभूतपरकर्मरता दरिद्रा ॥
(जातक परिजात ७-१२४)

(ख) यदि उभयचरी योग शुभ ग्रहो द्वारा उत्पन्न होता हो तो मनुष्य राजा होता है अथवा राजा के तुल्य धनी, सुखी, शीलवान् दयावान् मनुष्य होता है और यदि पाप ग्रहो द्वारा "उभयचरी" की सृष्टि हुई हो तो मनुष्य रोग मे ग्रस्त, दूसरो का सेवक, तथा दरिद्री होता है।

कु० स० १८

उदाहरण —यह कुण्डली सर-सी पी. की है जो महान् नीतिज्ञ कई राज्यो के मन्त्री थे। यहां सूर्य के दोनो ओर शुभ ग्रह, बुध तथा शुक्र स्थित होकर "उभयचरी" योग बना रहे हैं।

: ९ :
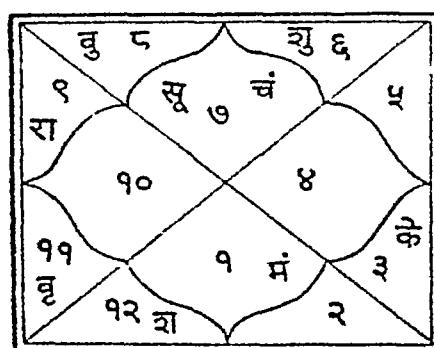
एकान्तोत्थित-रोग-योग

परिभाषाः—जब कोई ग्रह अनिष्ट स्थान मे हो और उस पर किसी शुभ ग्रह का युति अथवा दृष्टि द्वारा प्रभाव न हो तो वह ग्रह "ऐकान्तिक" अर्थात् अकेला कहलाता है और निज धातु सबन्धी रोग को देता है।

हेतु तथा फल—जैसे सूर्य नीच राशि का होकर अष्टम भाव मे हो और शुभयुत, शुभदृष्ट न हो बल्कि पापयुत, पापदृष्ट हो तो हड्डी के गलने आदि का रोग; यदि चन्द्र अष्टम अथवा छठे अथवा द्वादश भाव मे स्थित हो और पक्ष बल मे हीन हो अर्थात् सूर्य के समीप हो, पापयुत अथवा पापदृष्ट हो परन्तु शुभयुत अथवा शुभदृष्ट न हो तो मनुष्य को रक्तचाप (Blood Pressure) आदि रक्त सबन्धी रोग होगे। इसी प्रकार मङ्गल यदि यदि अष्टम आदि अनिष्ट भावो में स्थित हो, पापयुत अथवा पापदृष्ट हो परन्तु शुभयुत अथवा दृष्ट न हो तो मनुष्य को पट्ठो के रोगो जैसे सूखा (Atrophy of the muscles) आदि से पीडित होना पडेगा। इसी प्रकार यदि बुध अष्टमादि अनिष्ट स्थानों मे पापयुत अथवा पापदृष्ट परन्तु शुभ ग्रह की युति अथवा दृष्टि से रहित हो तो मनुष्य को बुध सम्बन्धी सास की नाली के रोगजैसे—दमा (Asthma) आदि होगे।

इसी प्रकार यदि गुरु की स्थिति हो तो मेदा तथा जिगर के रोगों से मनुष्य पीडित होता है। शुक्र की उक्त स्थिति मनुष्य को वीर्यहीन बना देगी और शनि की यही स्थिति मनुष्य को सन्निपात (paralysis) आदि रोगो से पीडित करेगी।

शास्त्रोक्ति—शास्त्रो के प्रमाणो के लिये "केमद्रुम" योग की पक्तियाँ देखिये। वहाँ से आपको स्पष्ट हो जायेगा कि "केमद्रुम"

योग का मुख्य कारण चन्द्रमा पर ग्रहों के प्रभाव का अभाव है। इस प्रभाव के अभाव में चन्द्र अनिष्ट फल करता है। इसी सिद्धान्त को अपनाते हुए हम यहाँ भी कह सकते है कि कोई भी ग्रह जब अष्टम आदि अनिष्ट स्थान में स्थित हो और किसी भी ग्रह के प्रभाव मे न हो अथवा केवल पाप प्रभाव मे हो तो वह अपना रोग देगा।

कु० स० १९

उदाहरण .—(i) यह कुण्डली एक व्यक्ति की है जिसे सूखा (Atrophy of the muscles) का रोग हुआ, यह रोग पट्ठों (Muscles) के कारक मङ्गल की अनिष्ट भाव अर्थात् आठवे भाव में नीच होकर स्थित होने तथा रोगदाता शुक्र की दृष्टि में होने और अन्य प्रभाव से रहित होने के कारण हुआ। सशय हो सकता है कि शुक्र की मङ्गल पर दृष्टि से रोग नही होना चाहिये था, परन्तु शुक्र रोग भाव का (छठे भाव का) स्वामी भी है और छठे से छठे भाव का भी। अतः यह अपनी दृष्टि द्वारा रोग ही देता है।

कु० स० २०

उदाहरण ·—(ii) यह कुण्डली रक्त चाप (Blood pressure) का उदाहरण उपस्थित करती है। देखिये चन्द्र अष्टम भाव में है और केवल बुध के केन्द्रिय प्रभाव में है। बुध पापी है क्योंकि इस पर राहु की दृष्टि भी है और सूर्य तथा शनि का पाप मध्यत्व भी। अतः चन्द्र पर केवल पाप प्रभाव होने के कारण रक्त चाप की सृष्टि हो रही है।

: १० :
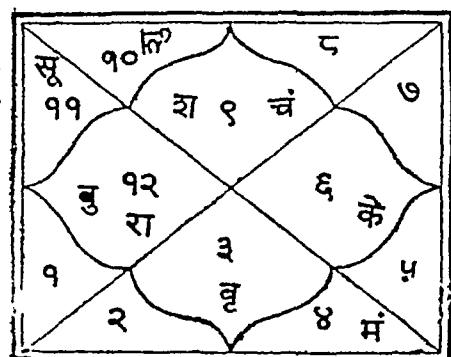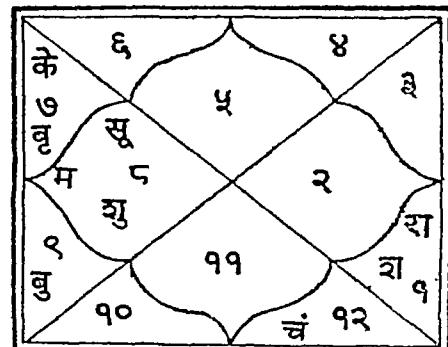
ऋण-योग

परिभाषा — छठे स्थान के स्वामी का तथा छठे से छठे भाव के स्वामी का सबन्ध जब द्वितीय भाव तथा उसके स्वामी, दोनो से हो तो मनुष्य ऋणग्रस्त रहता है।

हेतु —छठा स्थान "रोग, ऋण, रिपु" का है "भावात् भावम्" के सिद्धान्तानुसार एकादश भाव भी ऋण स्थान हो जावेगा। अत· षष्ठेश तथा एकादशेश के धन अथवा धनेश से सबन्ध द्वारा ऋणी होना युक्तियुक्त ही है।

कु० स० २१

भाव	ग्रह
३	सू, बु, श
२	शु
१	म
१२	बृ
११	
१०	रा
९	
८	
७	
६	
५	
४	के
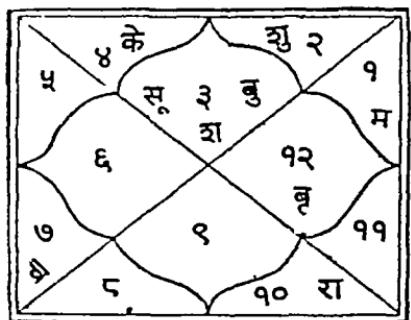
उदाहरण —यह एक ऋणग्रस्त व्यक्ति की कुण्डली है। देखिये मङ्गल न केवल छठे स्थान का स्वामी है बल्कि छठे से छठे अर्थात् ग्यारहवे का भी है। अत मङ्गल ऋण का पक्का, प्रतिनिधि हुआ। अब देखिये मङ्गल की पूर्ण दृष्टि न केवल धन स्थान पर ही है बल्कि धनस्थान के स्वामी चन्द्र पर भी है। अत पूर्ण ऋणयोग बन रहा है।

शास्त्रोक्ति —अन्नायास+ऋणापवादरिपुसन्तोषक्षयोष्णक्षता·

(उत्तरकालामृत ५—११)

अर्थात् छठे भाव से बासी अन्न, श्रम-ऋण-वदनामी-दुश्मनो की तृप्ति, क्षयरोग, उष्णता और चोट आदि बातो का विचार करना चाहिये। अत ऋण का योग धन से हो जाने से ऋण की उत्पत्ति उपयुक्त है।

: ११ :

कलानिधि योग

परिभाषा·—जब गुरु द्वितीय अथवा पंचम भाव में स्थित हो और बुध तथा शुक्र दोनो से युक्त अथवा दृष्ट हो अथवा गुरु, बुध अथवा शुक्र के नवाँश, राशि आदि में स्थित हो तो "कला निधि" नाम का योग बनता है।

फल.—"**कलानिधियोग**" में उत्पन्न होने वाला मनुष्य राज्य एश्वर्य से युक्त तथा कलाओं में निपुण होता है।

हेतु—गुरु राज्यकृपा अथवा राज्य का द्योतक ग्रह है। द्वितीय स्थान "शासन" स्थान है (देखिये सर्वार्थ चिन्तामणि) अत: जब गुरु की स्थिति द्वितीय स्थान मे होगी तो "राज्य" के द्योतक दो अङ्ग (Facter) एक स्थान में आ जावेंगे। अब यदि ऐसी स्थिति में बुध तथा शुक्र दो नैसर्गिक शुभ ग्रहो की युति अथवा दृष्टि द्वारा गुरु को लाभ पहु चे तो इसका अर्थ स्पष्टतया यह होगा कि "राज्य" के द्योतक दोनों अङ्गों को प्रफुल्लता तथा पुष्टि की प्राप्ति हो रही है। अत· ऐसी स्थिति में राज्य की प्राप्ति युक्तियुक्त है। गुरु यदि पंचम में स्थित हो तो भी उसकी स्थिति अतीव शुभ स्थिति है क्योंकि पचम भाव नवम से नवम में होने से नवम ही का प्रतिनिधित्व करता है। और नवम भाव राज्यकृपा का है। अत· पचम भाव मे स्थित गुरु पर बुध, शुक्र का प्रभाव भी राज्यदायक सिद्ध होगा। रह गई बात कलाओ में, अर्थात् गीत, वाद्य आदि मे, निष्णात होने की; सो इस प्रकार विचारणीय है कि गुरु ज्ञान-जानकारी का कारक ग्रह है और द्वितीय तथा पचम दोनों भाव विद्या और ज्ञान के द्योतक है। साथ ही गुरु यदि वागीश है तो यह दोनों वाक् स्थान है। इस कारण जानकारी और वाक् दोनों का प्रतिनिधित्व गुरु भावों से मिलकर

कर रहा है। अत बुध तथा शुक्र की गुरु पर युति अथवा दृष्टि उस जानकारी तथा उस वाक्-शक्ति को कलात्मक बनायेगी क्योकि बुध तथा शुक्र दोनो ही ग्रह "कला"—गाना बजाना, नाचना, चित्र खीचना आदि के प्रतिनिधि हैं।

शास्त्रोक्ति · (१) **द्वितीये पंचमे जीवे बुधशुक्रयुतेक्षिते।**
क्षेत्रे तयोर्वा सप्राप्ते, योग स्यात् स कलानिधिः।
(जातक पारिजात ७-१५८)

अर्थात् यदि गुरु द्वितीय पचम भाव मे बुध शुक्र से युक्त अथवा दृष्ट हो अथवा उनके क्षेत्र मे गुरु स्थित हो तो इस योग को कला निधि योग कहते हैं।

(२) **कामी कलानिधिभव: सगुणाभिराम,**
सस्तूयमानचरणो नरपालमुख्यै.।
सेनातुरगमदवारणभेरीवाद्या—
न्वितो विगतरोगभयारिसघ ॥
(जा० पा० ७—१५९)

अर्थात् कलानिधि योग मे उत्पन्न मनुष्य कामी, गुणो से परिपूर्ण राजाओ द्वारा वदित, महती सेवा से युक्त, रोग से मुक्त, भय तथा शत्रु से रहित, राजा होता है।

कु० स० २२

उदाहरण (१) यह कुण्डली विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की है। इससे गुरु पचम भाव अर्थात् बुद्धि स्थान मे उच्च का होकर स्थित है और वहाँ पर यह बृहस्पति लग्नाधिपति तथा चन्द्र लग्नाधिपति रूप से गया है, अत जो भी प्रभाव गुरु पर पडेगा वह लगन तथा चन्द्र लग्न पर भी समझा जायेगा अर्थात् उसमे सारा

व्यक्तित्व समोया हुआ समझा जायेगा। अब गुरु पर ये प्रभाव पड़ रहे है—एक तो पचम भाव का—जो बुद्धि, मन्त्रणा, विचारशक्ति, का भाव है, दूसरे बुध तथा शुक्र का जो गुरु से दशम केन्द्र में स्थित है बुध और शुक्र मिलकर हर प्रकार की कला के प्रतिनिधि बनते है। उनका गुरु लग्नेश चन्द्रेश पर प्रभाव यदि सर्वोत्तम कलाकार तथा कवि बनादे तो आश्चर्य क्या। एक और बात यह भी है कि जिन बुध शुक्र का प्रभाव लग्नाधिपति, चन्द्र लग्नाधिपति, पचम भाव तथा गुरु पर है उन्ही का प्रभाव सूर्य लग्न पर भी है। अतः व्यक्तित्व में पूर्णरूप से बुध, शुक्र के उत्तम गुण काव्य, ड्रामा पेन्टिग, लेखनकला शिक्षा, गायन आदि की प्राप्ति स्पष्ट है।

(२) शिवाजी गनेशन दक्षिण के प्रसिद्ध अभिनेता की कुण्डली मे गुरु यद्यपि मेष राशि का होकर तृतीय स्थान में है तो भी गुरु का द्वितीय स्थान से घनिष्ठ सबन्ध है क्योकि वह द्वितीय भाव का स्वामी है और विद्या तथा जानकारी का पूर्ण प्रतिनिधि है। अब जानकारी के इस गुरु पर बुध तथा शुक्र दोनों का पूर्ण प्रभाव है जिस के फलस्वरूप इस व्यक्ति की जानकारी मे बुध तथा शुक्र के गुण अर्थात् अभिनेतृकला आ चुकी है।

कु० सं० २३
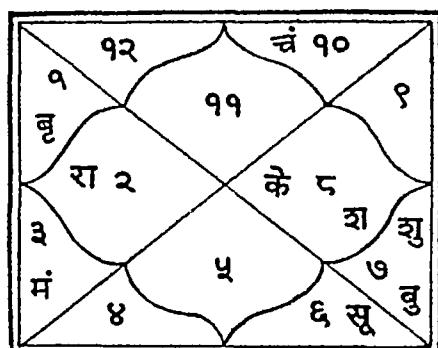
: १२ :

कारक-योग

परिभाषा—यदि दो अथवा दो से अधिक ग्रह उच्च राशि मे अथवा स्वक्षेत्र मे हों तथा परस्पर केन्द्र में स्थित हो तो "कारक" योग उत्पन्न करते है। परन्तु सारावलीकार ने कहा है कि हरि

नाम के आश्चार्य का मत है कि उक्त प्रकार के उच्च अथवा स्वक्षेत्री ग्रह न केवल परस्पर केन्द्र मे होने चाहिये बल्कि लग्न से भी केन्द्र मे हो तब कारक-योग की उत्पत्ति समझनी चाहिये। कारकयोग पदवी तथा धन देने वाला महान् योग है।

हेतु—जब दो ग्रह उच्च होकर अथवा स्वक्षेत्र मे होकर स्थित होगे तो यह स्पष्ट है कि वे बली होगे। ऐसे बली ग्रहो के परस्पर केन्द्र मे स्थित होने का अर्थ यह होगा कि वह अपनी उस केन्द्रस्थिति से अपनी उच्चता का अथवा स्वक्षेत्र मे होनेके कारण उत्पन्न शुभता का सचार एक दूसरे मे कर सकेगे जिसके फलस्वरूप उच्च अथवा स्वक्षेत्री ग्रह को और भी अधिक बल की प्राप्ति होगी और इस प्रकार वह अतीव शुभफल, जैसे ऊँची पदवी, धन, यश, आदि देने मे समर्थ होगा। जैसा कि हम कई बार देख चुके है केन्द्रस्थिति से परस्पर प्रभाव पडता है। यही इस योग की गरिमा का कारण है। (देखिए—पहला नियम)

शास्त्रोक्ति (१) "स्वर्क्ष त्रिकोणतु गंस्था यदि केन्द्रेषु संस्थिता।
अन्योन्यकारकास्ते स्यु केन्द्रेष्वेव हरेर्मतम्॥
(सारावली ६-१)

अर्थात्—यदि ग्रह अपनी ही राशि, अपनी मूलत्रिकोण राशि अथवा अपनी उच्च राशि मे स्थित हो और परस्पर केन्द्र मे स्थित हो तो वे परस्पर "कारक" हो जाते हैं परन्तु हरि का मत है कि उन उच्च आदि ग्रहो की स्थिति न केवल एक दूसरे से बल्कि लग्न से भी केन्द्र मे होनी चाहिए तब कारकाख्य योग बनेगा।

(२) "शुभ वर्गोत्तमे जन्म वेशिस्थाने च सद्गृहे।
अशून्येषु च केन्द्रेषु कारकाख्यगृहेषु च"
(पाराशर)

अर्थात्—यदि किसी मनुष्य का ऐसी लग्न मे जन्म हो जोकि वर्गोत्तम हो अर्थात् उसमे लग्न की नवाँश राशि लग्न ही की राशि

निकलती हो तो उसका जन्म शुभ समझना चाहिये अर्थात् उसे आरोग्य, धन, पदवी आदि सुख की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार यदि वेशि स्थान मे अर्थात् सूर्य से द्वितीय स्थान मे (सूर्य लग्नवत् है और सूर्य से द्वितीय स्थान धनधान्य का स्थान होगा) शुभ ग्रह की स्थिति हो तो भी जन्म शुभ समझना चाहिये। इसी प्रकार यदि किसी कुण्डली में लग्न से केन्द्रों में ग्रह स्थित हो तो भी जन्म शुभ है (क्योकि लग्न लग्न बलवान् हो जावेगा (देखिये पहला नियम) जो कि शुभ फल करेगा और अन्त मे, यदि कारकाख्य योग, जिस की चर्चा हम ऊपर कर चुके है, हो तो भी जन्म मगलमय समझना चाहिये।

उदाहरण–(१) यह कुण्डली रूस के भूत पूर्व मन्त्री ख्रूश्चेव की है। देखिये शनि, मंगल तथा सूर्य तीनो उच्च है और तीनो लग्न से तथा एक दूसरे से केन्द्र मे स्थित होकर कारक-योग बना रहे है।

कु० स० २४

(२) श्री वी. के. कृष्णा मेनन-भूतपूर्व मत्री भारतसरकार की कुण्डली साथ मे दी है। इस कुण्डली मे आप देखेंगे कि सूर्य, गुरु, तथा शनि तीनों अपनी-अपनी उच्च राशियो मे सुशोभित हैं और एक दूसरे से केन्द्र मे भी विद्यमान है। यहाँ इन उच्च ग्रहो की स्थिति यद्यपि लग्न से केन्द्र में नही हुई तथापि चन्द्र लग्न से केन्द्र मे हो गई है। अतः कारकाख्य योग का फल व्यक्ति को मिल गया।
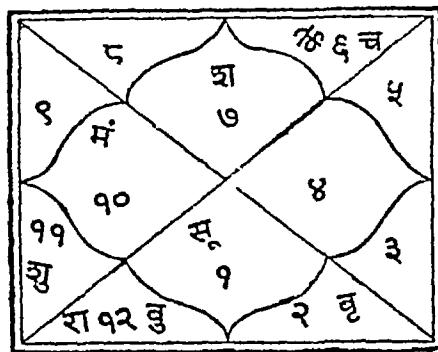
कु० स० २५
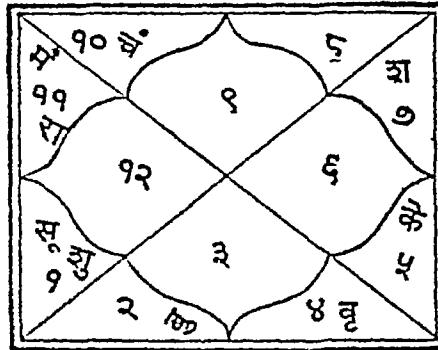
: १३ :

कालपुरुषोत्थरोग योग

परिभाषा—मेष आदि राशियाँ तथा लग्नादि भाव क्रमश सिर, मुख आदि काल पुरुष के अ गों के प्रतीक है। जब एक ही अग को दर्शाने वाले भाव अथवा राशि तथा उनके स्वामियो पर पाप प्रभाव होता है तो पीडित अग मे कष्ट होता है।

हेतु तथा फल—मनुष्य के शरीर के अगो का प्रतिनिधित्व राशियाँ तथा भाव इस प्रकार करते हैं ·—

राशि संख्या	भाव सख्या	तथा उनके स्वामी	अग
१	१	२	सिर
२	२	२	मुख
३	३	२	गला बाजू
४	४	२	छाती
५	५	२	पेट
६	६	२	अन्तड़ियाँ
७	७	२	मूत्रेन्द्रिय
८	८	२	अण्डकोष
९	९	२	नितम्ब
१०	१०	२	जानू
११	११	२	निचली टाँग
१२	१२	२	पाँव

जब चार के चार प्रतिनिधित्व करने वाले अग पीडित हो तो कष्ट निश्चित हो जाता है। जैसे सख्या ६ की राशि कन्या, उसका स्वामी बुध, उस का घर तथा उसका स्वामी यह चारो पीडित हो तो अन्तड़ियो मे कष्ट कहना चाहिये।

शास्त्रोक्ति—शशिनि विलग्ने कर्किणि कुजार्कदृष्टेऽथव
मीनोदये च दृष्टे कुजार्कि शशिभि. पुमान् भ
(सारावली—८ १०)

उदाहरण (१) इस व्यक्ति को हरनिया (Hernia) का रोग है। हरनिया रोग में अन्तड़ियां अपना स्थान छोड़ देती है। दूसरे शब्दों में अन्तड़ियों पर पृथक्ताजनक पाप प्रभाव होना चाहिये। अब काल पुरुष में अन्तिड़ियों के चार प्रतिनिधि होंगे। (i) छठा स्थान, (ii) इसका स्वामी शुक्र, (iii) छठी राशि कन्या, (iv) छठी राशि का स्वामी बुध, इन चारो पर पृथक्ताजनक प्रभाव होना चाहिये।

कु० स० २६

देखिये, छठे भाव तथा उसके स्वामी शुक्र इन दो अगों पर तो शनि अपनी युति द्वारा पृथक्ताजनक पाप प्रभाव डाल रहा है और छठी राशि कन्या, सूर्य तथा शनि के पृथक्ताजनक पाप प्रभाव में है। इसी प्रकार चतुर्थ अंग अर्थात् छठी राशि का स्वामी बुध, सूर्य तथा राहु के पृथक्ताजनक पाप प्रभाव मे है। इस प्रकार कालपुरुषोत्थ-रोग का योग हुआ।
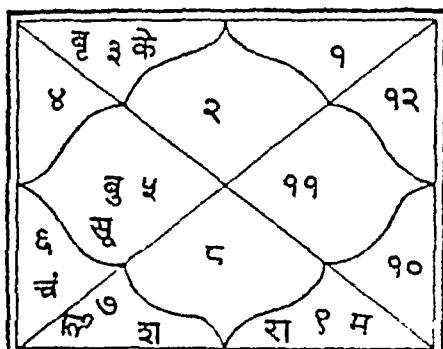
उदाहरण–(२) जब क्षयरोग (Tuberculosis) फेफड़ों के विकार के कारण उत्पन्न हो तो कालपुरुष के अग संख्या चार पर राहु अथवा शनि का प्रभाव अनिवार्य समझना चाहिये। इस व्यक्ति को कुमार अवस्था में ही फेफडो का क्षय (T. B. of the Lungs) हो गया था। यहाँ चार सख्यक राशि पर नीच पापी मगल पाप-प्रभाव डाल रहा है तथा यह राशि पाप-मध्यत्व मे भी है। चार सख्यक राशि का स्वामी चन्द्र, राहु के साथ होकर पीड़ित है। चार

कु० स० २७

सख्यक घर पर भी राहु की युति का पाप प्रभाव है और चार सख्यक घर के स्वामी अर्थात् गुरु पर शनि की पूर्ण दृष्टि है। अत काल पुरुष की छाती के चारो अगो पर पाप प्रभाव के कारण फेफडो का क्षय सिद्ध हुआ।
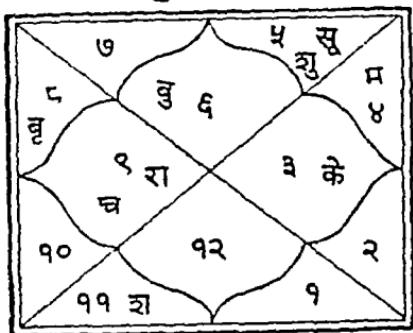
उदाहरण (३) काल पुरुष के सातवे अग के पीडित होने का एक दुर्लभ उदाहरण नीचे दिया जा रहा है। इस व्यक्ति के वीर्य मे जीवित कीटाणुओ (*Spermatazoon*) का अभाव है। देखिये लग्न मेष होने के कारण शुक्र न केवल सप्तम राशि का स्वामी है बल्कि सप्तम भाव का भी। ऐसा शुक्र दो-दो ग्रहो के पापमध्यत्व अर्थात् शनि, सूर्य तथा मगल, राहु के बीच मे पड़ा है। अत काल पुरुष के दो अग पीडित हुए। इसी प्रकार इन्ही

कु० स० २८
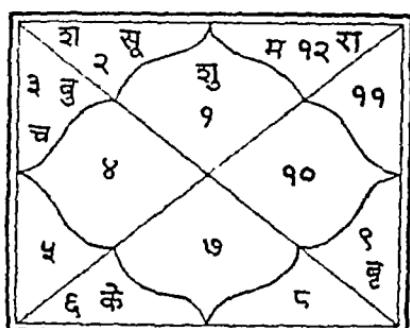
चार पापी ग्रहो का प्रभाव सात सख्यक भाव तथा सात संख्यक राशि पर पड रहा है क्योकि दो पापी ग्रह शनि तथा सूर्य की दृष्टि अष्टम पर और दो पापी ग्रहो, मगल तथा राहु की दृष्टि षष्ठ स्थान पर पडने के कारण सप्तम भाव तथा सप्तम राशि पाप प्रभाव मे आ गये है। इस प्रकार काल पुरुष के चारो के चारो अग, जो वीर्य को दर्शाते है, पाप प्रभाव मे पड गये और उक्त रोग की उत्पत्ति के कारण बने।

विशद व्याख्या और उदाहरणो के लिये देखिये हमारी पुस्तक "ज्योतिष और रोग" का अध्याय "कालपुरुष और रोग"।

: १४ :

काहल योग

परिभाषा—(क) यदि नवम भाव का स्वामी तथा चतुर्थ भाव का स्वामी परस्पर एक दूसरे से केन्द्र मे स्थित हों और लग्नाधिपति बलवान् हो तो "काहल" नाम का योग बनता है।

(ख) यदि दशम भाव का स्वामी और चतुर्थ भाव का स्वामी इकट्ठे हों अथवा चतुर्थेश को दशम भाव का स्वामी देखता हो और वह चतुर्थेश उच्च अथवा स्वराशि का हो तो भी "काहल" योग बनता है।

(ग) लग्नाधिपति जिस राशि मे स्थित है और फिर उस राशि का स्वामी पुन. जिस राशि मे स्थित हो उस राशि का स्वामी यदि अपनी उच्च राशि अथवा स्वक्षेत्र में होकर केन्द्र अथवा कोण मे स्थित हो तो भी "काहल" नाम का योग बनता है।

फल—काहल योग मे उत्पन्न होने वाला मनुष्य ओजस्वी, साहसी, राज्य-सम्पदा से युक्त, होता है।

हेतु—(क) पहली प्रकार के काहल योग मे एक तो लग्न के स्वामी के बलवान् होने से धन, बल, ऐश्वर्य की प्राप्त होती है; दूसरे, भाग्येश और चतुर्थेश का परस्पर केन्द्र मे स्थित होना, भाग्य के साथ सुख का योग उत्पन्न करता है; अर्थात् उसके जीवन में हर प्रकार का सुख सम्मिलित होता है। केन्द्रेश और त्रिकोणेश का योग पाराशरीय पद्धति अनुसार राजयोग देता ही है, यह हम आठवें नियम में दर्शा चुके है।

(ख) दूसरे प्रकार के काहल योग में प्रबल चतुर्थेश तथा कर्मेश का सबन्ध स्थापित होता है। इस का अर्थ यह निकलता है कि मनुष्य को राज्य (दशम) का सुख (चतुर्थ) प्राप्त होगा। लग्नेश का बलवान् होना, यहां भी अपेक्षित ही समझना चाहिये।

(ग) लग्नाधिपति जिस राशि मे स्थित है पुन उस राशि का स्वामी जिस राशि मे स्थित है उस राशि के स्वामी की प्रबलता से किसी न किसी प्रकार लग्न को बल मिलता होगा, यही इस योग के पीछे हेतु हो सकता है। यह हेतु इस लिये भी सगत प्रतीत होता है कि नीचता-भग-राजयोग मे भी तो उस भाव को बल मिलता है जिसका स्वामी नीच है और उस नीच राशि का स्वामी केन्द्र स्थिति से बलवान् है—देखिये तीसरा नियम।

शास्त्रोक्ति (क) अन्योन्यकेन्द्रगृहगौ गुरुबन्धुनाथौ,
लग्नाधिपे बलयुते यदि काहल स्यात्।
(जातक पारिजात ७-१३०)

अर्थात्—यदि चतुर्थेश तथा भाग्येश एक दूसरे से केन्द्र मे स्थित हो और लग्नाधिपति बलवान् हो तो "काहल" योग होता है।

(ख) कर्मेश्वरेण सहिते तु विलोकिते वा,
स्वोच्चस्वके सुखपतौ यदि तादृश स्यात्।।
ओजस्वी साहसी मूर्खश्चतुरंग बलै युते,
यत्किंचित् ग्रामनाथस्तु जात स्यात् काहले नर.।।
(जा. पा ७-१३१)

अर्थात्—यदि उच्च अथवा स्वक्षेत्र मे स्थित चतुर्थेश को दशमाधिपति देखता हो अथवा उससे युक्त हो तो भी काहल योग होता है। इस योग मे उत्पन्न होने वाला मनुष्य ओजस्वी, साहसी, सेनायुक्त, राजा होता है।

(ग) लग्नाधिपाप्तभपतिस्थितराशिनाथ,
स्वोच्चस्वभेषु यदि कोणचतुष्टयस्थः।
योग सः काहल इति प्रथितोऽथ तद्वत्,
लग्नाधिपाप्तभपतिर्यदि पर्वताख्य (फलदीपिका ६-३५)

अर्थात्—लग्नाधिपति जिस राशि मे स्थित है उस राशि का स्वामी जिस राशि मे स्थित है उसका स्वामी यदि उच्च राशि मे

अथवा निज राशि में स्थित हो तो काहल योग होता है और यदि लग्नाधिपति जिस राशि मे स्थित है उसका स्वामी उच्च राशि में अथवा स्वक्षेत्र मे हो तो पर्वत योग बनता है।

उदाहरण—(क) प्रथम प्रकार का "काहल" योग श्री मोरारजी देसाई की कुण्डली मे विद्यमान है क्योकि नवमाधिपति शनि चतुर्थाधिपति बुध से केन्द्र में है और लग्नाधिपति बुध, गुरु की दृष्टि द्वारा बली है। आपकी ऊँची स्थिति में काहलयोग का ही हाथ है।

कु० सं० २९

उदाहरण—(ख) यह कुण्डली एक लाखोपति बहुत धनी व्यक्ति की है। यहां नवम भाव का स्वामी शुक्र तथा चतुर्थ भाव का स्वामी गुरु, दोनों, साथ बैठे हैं और इस प्रकार "काहल" योग उत्पन्न कर रहे है। (प्रबल उच्च चन्द्र से पुनः गुरु, शुक्र को बल भी मिल रहा है)।

कु० स० ३०

उदाहरण—(ग) यह कुण्डली बड़े भारी रियासत के महामन्त्री की है। यहां चतुर्थेश शुक्र पर दशमेश मङ्गल की पूर्ण दृष्टि है और चतुर्थेश शुक्र केन्द्र मे निज राशि का होकर स्थित है।

कु० स० ३१
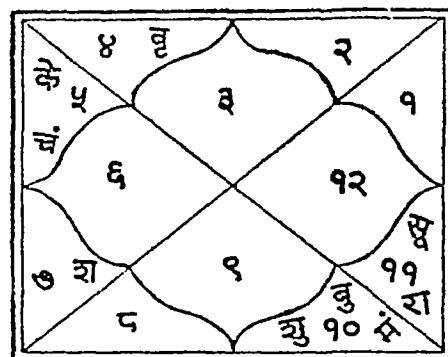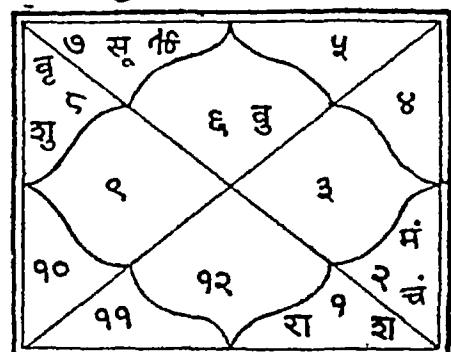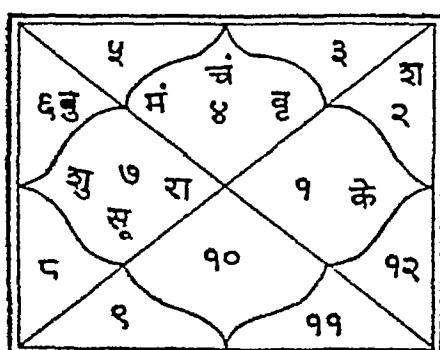
केमद्रुम योग

परिभाषा—(क) चन्द्र से द्वितीय तथा द्वादश स्थान में जब कोई भी ग्रह न हो तो "केमद्रुम" नाम का दरिद्रतादायक योग बनता है।

(ख) जब चन्द्र किसी ग्रह से युत न हो और न उससे अगले तथा पिछले केन्द्रो मे ही कोई ग्रह स्थित हो तो भी "**केमद्रुम**" नाम का दरिद्र योग बनता है।

हेतु—चन्द्र जहाँ स्थित होता है उसको चन्द्र लग्न कहते है। धनप्राप्ति मे अन्य लग्नो की भाँति "चन्द्रलग्न" का भी बडा महत्व है, ज्योतिष के आचार्यों का कहना है कि चन्द्र के विषय मे यह सिद्धात मौलिक रूप से समझ लेना चाहिये कि यदि चन्द्र किसी भी ग्रह के प्रभाव मे न हो तो वह निर्बल समझा जाना चाहिये और निर्बल चन्द्र का अर्थ है लग्न का निर्बल होना अर्थात् मनुष्य का धन, स्वास्थ्य, यश,बल आदि से वर्जित होना। अब वे कौन-कौन सी स्थितियाँ है जिनमे यह समझा जावे कि चन्द्र पर कोई प्रभाव नही है।एक स्थिति तो यह है कि चन्द्रके द्वितीय द्वादश स्थान मे कोई ग्रह न हो। दूसरी स्थिति यह है कि चन्द्र न तो किसी ग्रह से युक्त अथवा दृष्ट हो न ही इसके केन्द्र मे कोई ग्रह स्थित हो। योग का आशय यह है कि चन्द्र निर्बल तथा प्रभावहीन हो। यदि चन्द्र से छठे, अथवा आठवे स्थान मे ग्रह हो तो भी चन्द्र पर ग्रहो का प्रभाव समझना चाहिये और इसी लिये 'केमद्रुम" का अभाव समझना चाहिये। इसी प्रकार चन्द्र यदि स्वय केन्द्र मे स्थित हो तो भी वली हो जायेगा। इसी लिये 'केमद्रुम' योग न रहेगा।

शास्त्रोक्ति (क) कान्तान्नपानगृहवस्त्रसुहृद्विहीनो,
दारिद्रचदु खगददैन्यमलै रुपेत ।

प्रेष्य: खल. सकललोकविरुद्धवृत्ति,
केमद्रुमे भवति पार्थिववंशजोऽपि ।।
(सारावली—१३-७)

अर्थात्–यदि केमद्रुम योग हो तो मनुष्य, स्त्री, अन्न, पान, गृह, वस्त्र, व बन्धुजनों से विहीन होकर दरिद्रता, दु ख, रोग, परतन्त्रता व मल से युक्त, दूसरो से द्वेष करने वाला, दुष्ट और लोगों का अनिष्ट करने वाला होता है, भले ही, उसका जन्म किसी राजा के यहाँ ही क्यो न हुआ हो ।

(ख) **रविवर्जं द्वादशगैरनफा चन्द्राद्द्वितीयगै: सुनफा ।**
उभयस्थितै: दुरुधरा केमद्रुमसंज्ञकोऽतोन्य: ।।

अर्थात्—यदि चन्द्र से द्वादश स्थान मे रवि को छोड कर (क्योकि रवि के चन्द्र से द्वादश होने से चन्द्र, सूर्य के सान्निध्य मे पक्ष बल में अतीव निर्बल हो जायेगा और इसीलिये फल देने मे असमर्थ हो जायेगा) कोई भी ग्रह स्थित हो तो "**अनफा**" नाम का योग बनता है और यदि इसी प्रकार सूर्य को छोड़ कर अन्य कोई ग्रह चन्द्र से द्वितीय मे स्थित हो तो '**सुनफा**' नाम का योग बनता है और यदि दोनो स्थानों मे सूर्य को छोड़ कर कोई ग्रह स्थित हो तो "**दुरुधरा**" नाम का योग बनता है। परन्तु उक्त स्थानो में अर्थात् चन्द्र से द्वितीय तथा द्वादश मे कोई भी ग्रह न हो तो "**केमद्रुम**" नाम का योग बनता है।

(ग) **"केमद्रुमे" भवति पुत्रकलत्रहीनो,**
देशान्तरे व्रजति दुखसमाभितप्त ।
ज्ञातिप्रमोदनिरतो मुखर. कुचैलो,
नीच सदा भवति भीतियुतश्चिरायु ।।
(मानसागरी)

अर्थात्—"केमद्रुम" योग में उत्पन्न हुआ मनुष्य पुत्र तथा स्त्री से हीन, भ्रमणशील, दु खी, सबन्धियो से दूर, मोद से विरक्त,

मनमानी करने वाला, गन्दा, नीच, भयभीत होकर आयु पाता है।

(घ) **केन्द्रे शीतकरेऽथवा ग्रहयुते केमद्रुमो नेष्यते।**
केचित्केन्द्रनवांशकेषु इति वदन्ति उक्ति प्रसिद्धा न ते॥
(मानसागरी)

अर्थात्—यदि चन्द्र से केन्द्र मे ग्रह स्थित हो तो "केमद्रुम" योग नही बनता। इसी प्रकार यदि चन्द्र के साथ किसी भी ग्रह की युति हो तो भी केमद्रुम नही होता। कई विद्वान् यह कहते हैं कि केन्द्रो से **अनफा-सुनफा** योगो की उत्पत्ति होती है अर्थात् चन्द्र से पिछले केन्द्र मे ग्रह हो तो **'अनफा'**; आगामी (चतुर्थ) केन्द्र मे ग्रह हो तो **सुनफा** और दोनो मे हो तो **दुरुधरा** योग बनता है और यदि चन्द्र से चतुर्थ तथा दशम केन्द्र ग्रहो से खाली हो तो **"केमद्रुम"** नाम का योग बनता है। **परन्तु यह उक्ति प्रसिद्ध अर्थात् सर्वमान्य नहीं है।**

सूचना—चन्द्र से केन्द्रो मे ग्रहो की स्थिति से केमद्रुम भग होता है, हम इस उक्ति से सहमत हैं। चाहे यह बात प्रसिद्ध न भी हो क्योकि केन्द्र मे ग्रहो की स्थिति से उन ग्रहो का चन्द्र पर प्रभाव पडेगा (देखिये नियम पहला) जिसके फलस्वरूप चन्द्र बली हो जावेगा और केमद्रुम का भग होगा।

(ङ) **"पूर्ण शशी यदि भवेल्छुभसंस्थितो वा,**
सौम्यामरेज्यभृगुनन्दनसयुतश्च।
पुत्रार्थसौख्यजनक कथितो मुनीन्द्रै,
केमद्रुमे भवति मंगलसुप्रसिद्धि.॥
(मानसागरी)

अर्थात्—यदि चन्द्र पूर्ण हो अथवा शुभ स्थिति मे हो अर्थात् बुध, गुरु, अथवा शुक्र से सयुक्त हो तो पुत्र, धन तथा सुख को उत्पन्न करने वाला कहा गया है और केमद्रुम होने पर भी अर्थात् चन्द्र से द्वितीय, द्वादश, ग्रहो के अभाव होने पर भी मनुष्य मङ्गल तथा यश को प्राप्त होता है।

(च) जातकपारिजात में श्रुतकीर्ति का निम्नलिखित उद्धरण मिलता है :—

"चन्द्रात् चतुर्थे. सुनफा, दशमस्थितैः कीर्तितोऽनफा विहगै ।
उभयस्थितै. दुरुधरा केमद्रुमसञ्ज्ञितो ऽन्यथा ।। (७-८३

अर्थात् चन्द्र से चतुर्थ भाव मे ग्रह रहने से सुनफा, चन्द्र से दशम केन्द्र मे ग्रह रहने से अनफा, दोनों केन्द्रो में ग्रह रहने से दुरुधरा और दोनो केन्द्रों के ग्रहो से रहित होने पर "केमद्रुम" नाम का योग बनता है। (देखिये नियम पहला)।

(छ) एक अन्य प्रकार का 'केमद्रुम' योग सर्वार्थचिन्तामणिकार ने निम्न प्रकार कहा है :—

"भाग्येश्वरे रिफगते तदीशे वित्तस्थिते,
भ्रातृगतैश्च पापै केमद्रुमेऽस्मिन् भवेत् ।।
कुभोगी दुष्कर्मयुक्तोऽन्यकलत्रगामी ।

अर्थात् जब नवम भाव का स्वामी द्वादश भाव मे स्थित हो और द्वादश भाव का स्वामी द्वितीय भाव मे स्थित हो और तृतीय स्थान मे पापी ग्रह स्थित हों तो भी "केमद्रुम" नाम का दरिद्रतादायक योग समझना चाहिये। इस योग में उत्पन्न हुआ मनुष्य अभक्ष्य-भक्षी, दुष्ट कर्मो मे लगा हुआ तथा परदारगामी होता है।

उदाहरण - नीचे एक बहुत थोड़े धन वाले व्यक्ति की कुण्डली दी है। इस कुण्डली मे चन्द्र से द्वितीय तथा द्वादश स्थान ग्रहो से बिल्कुल खाली है। इस प्रकार एक तो यह केमद्रुम है। पुनः यही बात सूर्यसे तथा लग्नाधिपति शुक्र से भी बन रही है। और फिर सूर्य से, चन्द्र से तथा लग्नेश से, केन्द्रो मे केवल पापी ही पापी ग्रह—मङ्गल, राहु,

कु० सं० ३२
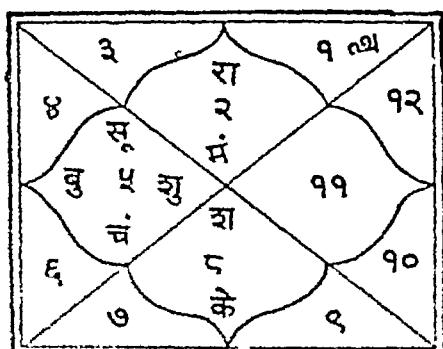
शनि तथा केतु विद्यमान है। चन्द्र आदि से छठा तथा आठवाँ भाव भी शुभ ग्रहो से खाली है। यहाँ यद्यपि चन्द्र पर गुरु की दृष्टि है तथापि इस दृष्टि में अधिक बल नही, क्योकि गुरु पर डबल पाप कर्तृ प्रभाव है; वह ऐसे कि गुरु के एक ओर मङ्गल तथा राहु है और दूसरी ओर केतु तथा शनि का प्रभाव केतु की पचम दृष्टि द्वारा है। अत. केमद्रुम योग बहुत हदतक सिद्ध हो रहा है।

: १६ :

कर्तरि-योग

परिभाषा—लग्न से द्वितीय तथा द्वादश मे ग्रहो की स्थिति से "कर्तरि-योग" बनता है। इसके दो भेद हैं—

यदि लग्न से द्वितीय तथा द्वादश स्थान मे शुभ ग्रहो की स्थिति है तो योग का नाम "शुभ कर्तरि' होगा और यदि इन स्थानो मे पाप ग्रहो की स्थिति हो तो योग "पापकर्तरि" नाम से कहा जायेगा।

फल —जब किसी भी भाव अथवा ग्रह से द्वितीय तथा द्वादश स्थान मे ग्रहो की स्थिति होती है तो वे ग्रह उस भाव अथवा ग्रह को जिस से कि वह द्वितीय द्वादश होते हैं, प्रभावित करते हैं। वह प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि वे दोनो ग्रह नैसर्गिक पापी है अथवा नैसर्गिक शुभ। यदि दोनो नैसर्गिक पापी हैं तो फल अशुभ होगा और यदि दोनो शुभ हैं तो फल शुभ निकलेगा। यदि एक पापी हो और एक शुभ तो फल मे कोई अन्तर न होगा अर्थात् जो लग्न आदि उन ग्रहो के मध्य मे है उनके बल पर तथा लग्नादि पर अन्य ग्रहो की शुभता-अशुभता के अनुसार फल का निर्णय होगा।

हेतु—यहा शुभता अथवा अशुभता मे हेतु ग्रहो का द्वादश तथा द्वितीय स्थान पर प्रभाव है। जब भी किसी भी प्रकार किसी भाव

के द्वितीय द्वादश स्थान पर शुभ प्रभाव पड़ेगा तब वह भाव प्रफु-ल्लित होगा। अन्य किसी प्रकार यह प्रभाव द्वितीय तथा द्वादश स्थान पर पड़ सकता है, इस का विवरण नीचे शास्त्रोक्ति की पक्तियों में देखिये।

शास्त्रोक्ति:—

(क) शुभ कर्तरि संजातस्तेजोवित्तबलाधिकः।
पापकर्तरिके पापी भिक्षाशी मलिनो भवेत्॥

(जातक पारिजात७—१२७)

अर्थात् शुभ-कर्तरि में जन्म लेने वाला मनुष्य तेज, धन तथा बल से परिपूर्ण होता है और पाप-कर्तरि में जन्म लेने वाला भिक्षा मांग कर जीने वाला अर्थात् निर्धन और गन्दा होता है।

(ख) होराशतक में हमने कहा है:—

होराशास्त्र के विद्वानो ने भावों के फल कहने के लिये "शुभ मध्यत्व" और 'पाप मध्यत्व' का उल्लेख किया है। चन्द्राधियोग का जो धन दायक शुभ फल होता है उसका कारण भी यही है कि षष्ठ तथा अष्टम मे स्थित शुभ ग्रहों की दृष्टि के फलस्वरूप चन्द्र के द्वादश तथा द्वितीय भाव पर शुभ प्रभाव पड़ता है जिससे चन्द्र शुभमध्यत्व में मानो आ जाता है। अत: जिस किसी भी भाव अथवा ग्रह का फल कहना हो तो देख लेना चाहिये कि उस पर "पार्श्वगामिनी" शुभ दृष्टि है अथवा नही। यदि है तो वह भाव अथवा ग्रह जिसके आस पास शुभ प्रभाव पड़ रहा है शुभ फल देगा। इसी प्रकार यदि किसी भाव अथवा ग्रह से षष्ठ, अष्टम मे पापी ग्रहों की स्थिति हो (अथवा अन्य किसी प्रकार से उस भाव के आस पास पाप प्रभाव पड़ता हो) तो आस पास (पार्श्वगामी) पाप प्रभाव के कारण वह भाव अथवा ग्रह अशुभ फल देगा।

उदाहरण (क) यह कुण्डली गृहमन्त्री च्यवान की है। लग्न तथा सूर्य दोनो पर शुभ कर्तरि है अर्थात् दोनो से द्वितीय, द्वादश स्थान मे शुभ ग्रहो की स्थिति है। स्पष्ट है कि इस शुभ प्रभाव के फलस्वरूप लग्न तथा सूर्य लग्न दोनो बल पाते है। यही नही, चन्द्र लग्न भी बल पा रहा है क्योकि बुध जो इन दो शुभ ग्रहो, शुक्र तथा गुरु की शुभकर्तरि मे है चन्द्राधिष्ठित राशि का स्वामी है।
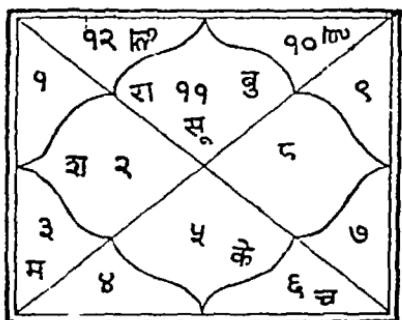
कु० स० ३३

कु० स० ३४
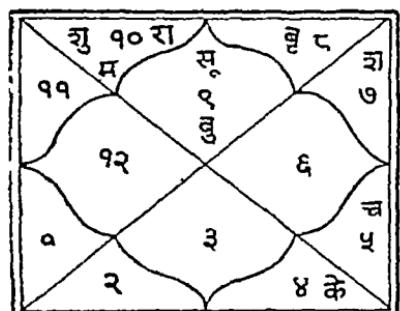
नीरो रोमन सम्राट् की इस कुण्डली मे धनु लग्न है और लग्न से द्वादश मे गुरु तथा द्वितीय मे शुक्र विद्यमान है। इन शुभ ग्रहो की यह स्थिति सूर्य लग्न से भी वैसी ही है। अर्थात् लग्न और सूर्य लग्न दोनो पर शुभ कर्तरि बन रही है जिस का लाभ लग्न और सूर्य लग्न दोनो लग्नो को मिल रहा है। दो लग्नो का शुभ प्रभाव मे आना नीरो के महान् बनने मे कारण बना।

: १७ :

खड्ग-योग

परिभाषा —यदि भाग्येश धन भवन मे हो और धनेश भाग्य भवन मे हो और साथ ही लग्नेश केन्द्र अथवा कोण मे स्थित हो तो "खड्ग" योग बनता है।

फल .—इस योग मे उत्पन्न होने वाला समस्त वेद शास्त्रो के

अर्थों से अभिज्ञ बुद्धिमान्, प्रतापवान्, निरभिमानी, कुशल,कृतज्ञ मनुष्य होता है।

हेतु —यदि हम यह बात स्मरण रखे कि द्वितीय भाव "विद्या" अथवा जानकारी का भाव है। और जिस प्रकार का प्रभाव इस भाव अथवा इसके स्वामी पर पड़ता है मनुष्य की विद्या भी उसी ही प्रकार की होती है तो फिर हमें खड्ग योग के फल समझने मे कोई कठिनाई न होगो। देखिये नियम दसवा। द्वितीयेश तथा नवमेश में व्यत्यय (exchange) का अर्थ यह होगा कि द्वितीय तथा नवम मे घनिष्ठ संबन्ध हो गया है अर्थात् जानकारी तथा धर्म मे (और धर्म शास्त्रों में) सबन्ध स्थापित हो चुका है। इसी संबन्ध के कारण मनुष्य शास्त्रज्ञ धार्मिक, कृतज्ञ आदि धार्मिक विशेषणों से युक्त होता है। द्वितीय भाव से विद्या का विचार किया जाता है। इस बात के लिये "सर्वार्थ चिन्तामणि" आदि ग्रन्थों का अवलोकनकोजिये।

शास्त्रोक्ति .—

भाग्येशे धनभावस्थे धनेशे भाग्यराशिगे।
लग्नेशे केन्द्रकोणस्थे खड्गयोग इतीरितः॥

(जा०पा०७—१५०)

भाग्येश दूसरे भाव में हो और द्वितीयेश भाग्य (नवम) भाव मे हो और लग्नेश केन्द्र अथवा कोण भाव मे स्थित होतो 'खड्ग' नाम का योग कहा जाता है॥

वेदार्थशास्त्र निखिलागमतत्वयुक्ति-
बुद्धिप्रतापबलवीर्यसुखानुरक्ताः।
निर्मत्सराश्च निजवीर्यमहानुभावा॥
खड्गे भवन्ति पुरुषा . कुशला : कृतज्ञा :

(जातक पारिजात ७—१५१)

अर्थात् वेदो के अर्थ शास्त्र तथा अन्य आगम ग्रथो से अभिज्ञ, बुद्धि प्रताप, बल, वीर्य, सुख से युक्त, अभिमान से रहित, बलवान् कुशल तथा कृतज्ञ मनुष्य की उत्पत्ति इस योग मे होती है।

कु० स० ३५
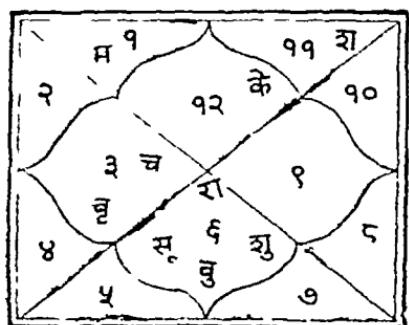
उदाहरण.—इस सन्दर्भ मे स्वर्गीय श्रीमती एनीबेसेन्ट की कुण्डली देखने योग्य है, इस कुण्डली मे यद्यपि द्वितीयाधिपति तथा नवमाधिपति मे स्थान परिवर्तन नही है जैसा कि इस योग की परिभाष चाहती है तो भी हम समझते हैं कि यह कुण्डली योग के आशय को पूर्ण करती है क्योकि लग्नाधिपति गुरु केन्द्र मे है और द्वितीय तथा नवम भाव मे घनिष्ठ सबन्ध है। यह घनिष्ठ सबन्ध मङ्गल ने दोनों भावो का स्वामी होकर तथा एक मे बैठकर और दूसरे पर दृष्टि डालकर उत्पन्न कर दिया है। जिस का यह अर्थ हुआ कि जानकारी (द्वितीय भाव) का सबन्ध धर्म तथा धर्म ग्रन्थो से (नवम भाव) स्थापित हो गया। इसी सम्बन्ध ही का यह फल था कि इस महान् महिला ने एक दो नही सैकड़ो उत्तम ग्रन्थ हिन्दु धर्म, उसकी महान्ता तथा उसके दर्शन पर तथा अध्यात्मविद्या पर लिखे।

: १८ :

गजकेसरी योग

परिभाषा .—(क) यदि चन्द्र से केन्द्र से गुरु स्थित हो तो "गज-केसरी" योग होता है।

(ख) यदि चन्द्रमा शुक्र, गुरु, बुध से दृष्ट हो और देखने वाले ग्रह नीच अथवा अस्त न हो तो भी "गज केसरी" योग बनता है।

फल —गज केसरी योग में उत्पन्न मनुष्य तेजस्वी धनधान्य से युक्त, मेधावी, गुण सपन्न, राजा से लाभ उठाने वाला होता है।

हेतु —प्रथम प्रकार के गजकेसरी योग में गुरु की चन्द्र से केन्द्र मे स्थिति के कारण चन्द्र पर प्रभाव पडेगा और चन्द्र के गुण बढ़ जायेंगे (देखिये नियम पहला)। चन्द्र चूँकि लग्नवत् है अत. गुरु के प्रभाव के कारण शरीर मे तेज आ जायेगा, चन्द्र का खाने-पीने की वस्तुओं से विशेष सबन्ध है, अतः उक्त गुरु के शुभ प्रभाव से धन धान्य की भी वृद्धि होगी। चन्द्रमा मन है, मन मे गुरु की मेधाशक्ति का सचार होगा तथा अन्य शुभ गुणों की प्राप्ति होगी। गुरु 'राज्य कृपा'' का कारक है वह लग्न (Self) को, निजको, राज्य की कृपा (Governmental favour) की प्राप्ति भी करवा देगा।

शास्त्रोक्तिः—(क) केन्द्रस्थिते देवगुरौ मृगाङ्काद्,
योगस्तदाहुर्गजकेसरीति ।
दृष्टे सितार्यैन्दुसुतै . शशांके,
नीचास्तहीनै र्गजकेसरी स्यात्॥

(जातक पारिजात अ ७ श्लोक ११६)

चन्द्रमा से केन्द्र मे बृहस्पति हो तो "गज केसरी" योग होता है। शुक्र, गुरु, बुध ये ग्रह नीच अथवा अस्त न होते हुए यदि बृहस्पति को देखे तो भी "गज केसरी" योग होता है।

(ख) गजकेसरीसंजातस्तेजस्वी धनधान्यवान्।
मेधावी गुणसंपन्नो राज्यप्राप्तिकरो भवेत्॥ (जातक परिजात)

अर्थात् "गज केसरी" मे उत्पन्न तेजस्वी धन धान्य से युक्त, मेधावी, गुणी, राजप्रिय होता है।

उदाहरण (क) यह एक करोड़पति (Multimillinaire) की

कु० स० ३६

कुण्डली है। यहाँ अन्य योगों के अतिरिक्त "गज केसरी" भी विद्यमान है क्योकि चन्द्र से दशम केन्द्र मे गुरु विद्यमान है और गुरु यद्यपि द्वादश भाव मे है परन्तु वक्री होने से अच्छा बलवान् है। अत अपनी केन्द्रस्थिति द्वारा चन्द्र को लाभ पहुचा रहा है जिसका फल धन आदि है।
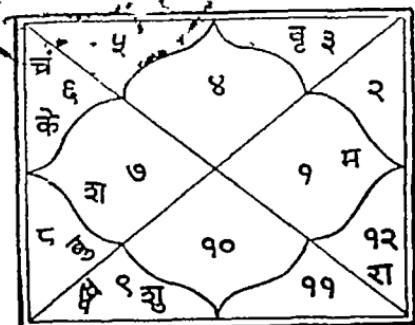
उदाहरण (ख) इसी प्रकार की एक और कुण्डली वृश्चिक लग्न की है। यह व्यक्ति थोडी पूजी से अपने व्यापार को बढा कर लाखों तक ले गया है। यहा भी वक्री और इसी लिये बलवान् गुरु चन्द्र से दशम केन्द्र मे स्थित होकर अपनी शुभता द्वारा चन्द्र को बहुत बल प्रदान कर रहा है जिसके फलस्वरूप चन्द्र लग्न तथा भाग्य को बहुत लाभ पहुच रहा है। इस व्यक्ति को राजपुरुषो की ओर से भी सहायता मिलती रहती है। क्योकि चन्द्र नवमाधिपति होकर गुरु (राज्य कृपाकारक) द्वारा दृष्ट है।
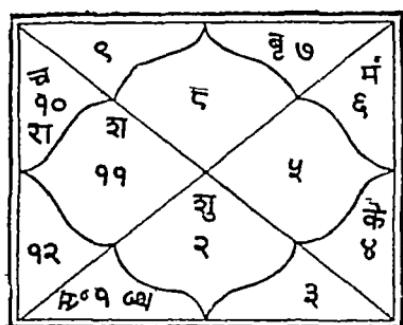
कु० स० ३७

कु० स० ३८

उदाहरण (ग)—तुलालग्न की कुण्डली मे जो कि रूस के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री खुश्चेव की है गुरु यद्यपि चन्द्र से केन्द्र मे नही परन्तु गुरु की पूर्ण दृष्टि चन्द्र पर पड रही है। गुरु की दृष्टि के अतिरिक्त चन्द्र पर बुध की भी पूर्ण दृष्टि है और

बुध न केवल एक नैसर्गिक शुभ ग्रह ही है अपितु चन्द्र लग्न का स्वामी भी है। अत इस कुण्डली में गजकेसरी योग की उत्पत्ति चन्द्र पर दो शुभ ग्रहों के प्रभाव से उत्पन्न हुई मानी जायेगी।

उदाहरण :—(घ) गृहमन्त्री च्यवान की कुण्डली में भी गज केसरी योग की उत्पत्ति कन्या राशि में अष्टम स्थान में स्थित चन्द्र पर दो शुभ ग्रहों, शुक्र तथा गुरु, के प्रभाव के कारण हो रही है। परन्तु यहाँ यह योग बहुत अधिक प्रबल नहीं है

कु० स० ३६

क्योकि गुरु एक तो नीच का है दूसरे द्वादशस्थ है तीसरे मङ्गल द्वारा दृष्ट है और चौथे सूर्य के अति समीप होकर तीव्र गति में आकर निर्बल है। इन सब कारणों से गुरु अपनी दृष्टि द्वारा चन्द्र को थोडा लाभ पहुचा रहा है, अधिक नही।
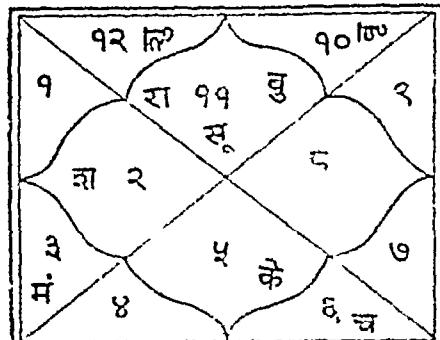
: १६ :

घातक (Murderer) योग

परिभाषा :—जब तृतीयाधिपति तथा अष्टमाधिपति एक ही ग्रह हो और वह तीन चार प्रकार से पाप प्रभाव में पडता हो और शुभ प्रभाव से रहित हो तो "घातक" योग होता है।

फल —ऐसे योग में उत्पन्न होने वाला मनुष्य दूसरों की जान लेने वाला होता है।

हेतु –यह सिद्धान्त है कि जब कोई ग्रह अत्यन्त निर्बल होता है तो जिन दो राशियो का वह स्वामी हो उनको हानि पहुचती है। इसके साथ साथ एक भाव को दूसरे से हानि पहुँचती है जैसे मान लीजिये

मीन लग्न है और शुक्र तृतीयाधिपति तथा अष्टमाधिपति होकर अतीव निर्बल है तो ऐसी स्थिति मे अष्टम को तृतीय से हानि पहु-चेगी अर्थात् आयु को निज (बाहु) से हानि पहुचेगी । चूँकि अष्टम स्थान अपनी तथा अन्यो सब की आयु का स्थान है इसका अर्थ यह हुआ कि उस व्यक्ति के बाहु से (निज द्वारा) दूसरो की जान जायेगी ।

शास्त्रोक्ति—केन्द्रेशत्वेन पापानां या, प्रोक्ता शुभकारिता ।
सा त्रिकोणाधिपत्येपि न केन्द्रेशत्वमात्रत ।।
(पाराशर होराशास्त्र)

अर्थात् नैसर्गिक पापी ग्रह जब केन्द्र के स्वामी हो तो शुभ होते हैं ऐसा जो कहा है वह उसी स्थिति के लिये कहा है जब कि वे त्रिकोण के भी स्वामी हो । केवल केन्द्र के नही । भाव यह कि ग्रहो की दोनो राशियो के भावो को विचार मे लिया जाता है क्योकि यह दोनो भाव नैसर्गिक रूप से परस्पर घनिष्ठ रूप से मिले हुए है । अत यहा भी तृतीय तथा अष्टम का परस्पर घनिष्ठ सबन्ध है ।

उदाहरण—यह कुण्डली जगत् विख्यात हिमलर की है जिसने हजारो यहूदियो को कडी यातनाए देकर मार दिया अथवा मरवा डाला । यहाँ तृतीय तथा अष्टम स्थान का स्वामी शुक्र छठे स्थान मे स्थित है । छठा स्थान शुक्र के लिये विशेष हानिकर माना है चाहे इस से मनुष्य को कितनी ही भोग सामग्री क्यो न प्राप्त हो । फिर शुक्र छठे स्थान मे शत्रु राशि मे निर्बल है ।
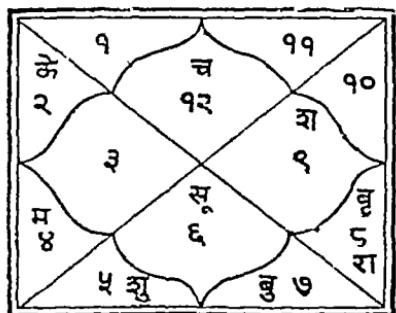
कु० स० ४०

पुन शुक्र पर सूर्य तथा मंगल का पापमध्यत्व है । और केतु का प्रभाव भी । इस प्रकार चार पापी प्रभावो के कारण शुक्र अतीव

निर्बल है। इसका फल यह है कि अष्टम भाव को तृतीय भाव से हानि हो रही है अर्थात् लोगों के जीवन को (अष्टम भाव) निज द्वारा तृतीय बाहु स्थान) हानि पहुच रहीहै।

: २० :

चक्षु निर्बलता योग

परिभाषा—यदि सूर्य द्वादश अथवा द्वितीय स्थान मे स्थित हो और पाप दृष्ट हो तो दृष्टिशक्ति मे बहुत निर्बलता लाता है अथवा चक्षुहीन तक कर देता है।

हेतु—सूर्य प्रकाश है और आख का कारक। द्वितीय तथा द्वादश स्थान, दोनों आंखों के स्थान है। सूर्य का इन मे से किसी स्थान में स्थित होने का तात्पर्य यह होगा कि जहां सूर्य आँख रूप से स्वय इस भाव मे पीड़ित है वहाँ द्वादश भाव भी पीड़ित हो रहा है और फिर दोनों पर पाप ग्रह की दृष्टि है। इस प्रकार दृष्टि के दोनों प्रतिनिधियों को निर्बल करेगी ही।

उदाहरण (क) इस व्यक्ति के दाँई आँख की ज्योति छोटी आयु मे ही जाती रही। यहाँ सूर्य द्वादश में स्थित है, प्रबल उच्च शनि से पूर्ण तथा दृष्ट है और केतु के प्रभाव मे भी है। द्वादशाधिपति पर दो पापी ग्रहो शनि तथा मंगल की दृष्टि है।

कु० स० ४१

यहां सूर्य पर शुभ मध्यत्व की आशंका हो सकती है परन्तु शुक्र तथा बुध दोनों पापी ग्रहो का पार्ट खेल रहे है क्योंकि बुध केतु अधिष्ठित राशि का स्वामी होने के कारण पापी है तथा शुक्र तुला का स्वामी
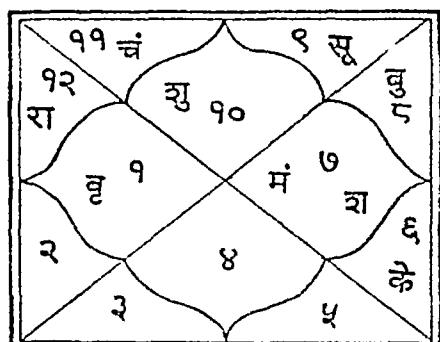
है जो कि मगल तथा शनि से अधिष्ठित है। अत उलटा बुध तथा शुक्र द्वारा सूर्य पर पाप मध्यत्व है।

कु० स० ४२
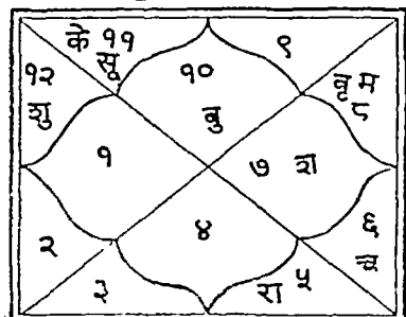
उदाहरण—(ख) इस व्यक्ति की दोनो आँखे बाल्यावस्था मे ही जाती रही। यहाँ सूर्य शत्रु राशि मे शत्रु युक्त द्वितीय स्थान मे स्थित है। और उस पर परम क्रूर तथा महान् बली मगल की क्रूर दृष्टि है। इस दृष्टि के कारण सूर्य तथा द्वितीय भाव दोनो को हानि पहुँच रही है जिसका फल चक्षुहीनता मे निकला।

शास्त्रोक्ति— (क) व्ययभवनगतश्चन्द्रो वामं चक्षु र्विनाशयति हीन,
सूर्यस्तथैव चान्यच्छुभ दृष्टौ याप्यतां नयत ॥

(ख) रविर्द्वादशे नेत्र रोगकरोति। (सारावली ८-५५)

सूर्य द्वादश मे हो तो नेत्र रोग करता है।

: २१ :

दरिद्र योग

दरिद्र योग निम्नलिखित ग्रह स्थितियों मे होता है—

परिभाषा—१ यदि सूर्य तथा चन्द्र इकट्ठे हो और नीच ग्रह से दृष्ट हो;

२ यदि सूर्य तथा चन्द्र इकट्ठे हो और पाप नवाँश मे स्थित हो,

३ यदि रात्रि के जन्म मे क्षीण चन्द्र लग्न से अष्टम स्थान मे स्थित हो तथा पाप ग्रह से युत अथवा दृष्ट हो,

४. चन्द्र, राहु आदि से पीडित हो तथा पापी ग्रह से भी पीडित हो,

५. लग्न से चारों केन्द्रों में केवल पापी ग्रह हों ;

६. चन्द्र से चारों केन्द्रों में केवल पापी ग्रह हो;

७. चन्द्र केन्द्र अथवा कोण मे स्थित हो परन्तु नीच अथवा शत्रु के वर्ग मे स्थित हो और चन्द्र से छठे, आठवे अथवा द्वादश में गुरु हो ;

८. चन्द्र यदि चर राशि मे हो, पापी ग्रह के नवाश में स्थित हो, शत्रु ग्रह से दृष्ट हो, अथवा चर नवांश में स्थित हो और गुरु की दृष्टि से रहित हो।

फल—इन सब योगों में उत्पन्न मनुष्य निर्धन होता है।

हेतु—चन्द्र लग्न है, अतः धन का द्योतक है। जब-जब चन्द्र निर्बल होगा चाहे वह पाप युति से, पाप दृष्टि से, चन्द्र से केन्द्र मे पापी ग्रहों की स्थिति से, पापी तथा शत्रु नवाश में स्थिति से अथवा सूर्य के सान्निध्य से, नीच ग्रह की दृष्टि से शुभ दृष्टि से वर्जित होने के कारण, हो तभी तब धन हानि, दरिद्रता का योग बनावेगा। यही हाल लग्न का है। लग्न से भी जब केन्द्र में केवल पापी ग्रह हो तो लग्न निर्बल हो जाता है (देखिये नियम सख्या एक) और लग्न चूकि धन है उसकी निर्बलता दरिद्र बनाती है।

उपर्युक्त परिभाषा की पुष्टि में जातक पारिजात के सप्तम अध्याय के निम्नलिखित श्लोक देखिये :—

(क) चन्द्रे सभानौ यदि नीचदृष्टे,
पासांशके याति दरिद्र योगम्।
क्षीणेन्दु लग्नान्निधने निशायाम्,
पापेक्षिते पापयुते तथा स्यात्॥ (जा. परि. ७–७४)

(ख) विधुन्तुदादि ग्रह पीड़ितेन्दौ पापेक्षिते चाशु दरिद्रमेति।
लग्नात् चतुष्केन्द्र गृहे सपापे निशाकराद् वा आशु द्ररिद्रमेति॥
(जा. पा. ७–७५)

(ग) केन्द्रे वा यदि कोणगे हिमकरे नीचारिवर्गं स्थिते,
चन्द्रादन्त्यसपत्नरन्ध्रगृहगे 'जीवे दरिद्रो भवेत्।
(घ) पापांशे रिपुवीक्षिते चरगृहे चन्द्रे चरांशेऽथवा।
जातो याति दरिद्रयोगमतुलं देवेज्यदृग्वर्जिते ॥
(जा. पा ७-७७)

: २२ :

दुरुधरा योग

परिभाषा—जब चन्द्र से द्वादश तथा द्वितीय स्थान मे सूर्य को छोडकर कोई ग्रह स्थित हो तो दुरुधरा योग बनता है।

फल—दुरुधरा का फल योग बनाने वाले ग्रहो की प्रकृति गुण-स्वभाव पर निर्भर करता है। प्राय ऐसा मनुष्य सुख भोग करने वाला, धनी होता है।

हेतु—ग्रहो का चन्द्र से द्वितीय, द्वादश होना चन्द्र मे कार्य करने की शक्ति का सचार करता है। यह स्वाभाविक ही है कि यह कार्य शुभता की ओर अधिक अग्रसर होगा जबकि दो ग्रह-नैसर्गिक शुभ हो। चन्द्रसे द्वितीय, द्वादश मे सूर्य के होने से चन्द्र पक्ष बल मे क्षीण हो जाता है। क्योकि चन्द्र का मुख्य बल उस के लिये "पक्षबल" ही है। अर्थात् चन्द्र जितना-जितना सूर्य के समीप आता चला जावेगा उतना-उतना निर्बल होता चला जावेगा। "इसीलिये" सूर्य द्वितीय, द्वादश न हो ऐसा कहा है।

शास्त्रोक्ति—रविवर्ज्यं द्वादशगैरनफा चन्द्राद्द्वितीयगै सुनफा।
उभयस्थितै दुंरुधरा केमद्रुम संज्ञकोऽतोऽन्य. ॥
(लघु जातक १२-१)

अर्थात्—सूर्य को छोडकर जब कोई ग्रह चन्द्र से द्वादश हो तो अनफा, और इसी प्रकार सूर्य के अतिरिक्त कोई ग्रह चन्द्र से द्वितीय मे हो तो सुनफा, जब दोनो स्थानो मे सूर्य के अतिरिक्त कोई न

कोई ग्रह हो तो "दुरुधरा" नाम का योग होता है और जब इन तीनों योगो मे से कोई योग न हो अर्थात् चन्द्र से द्वितीय, द्वादश में कोई भी ग्रह न हो तो केमद्रुम योग होता है।

> उत्पन्नभोग-सुख-भुग्धन-वाहनाढ्य-,
> स्त्यागान्वितो दुरुधरा प्रभव. सुभृत्यः।
> केमद्रुमे मलिनदु.खितनीचनिस्वः,
> प्रेष्य· खलश्च नृपतेरपि वंशजातः॥

(बृहज्जातक ३-६)

अर्थात्—जन्म से ही सुख भोगने वाला धन और वाहनों से युक्त त्यागशील, नौकर-चाकरो वाला, ऐसा मनुष्य दुरुधरा योग मे उत्पन्न होता है और यदि केमद्रुम योग वनता हो तो मनुष्य परतन्त्रता से जीवन निर्वाह करने वाला और दुष्ट होता है।

कु० स० ४३

उदाहरण (१)—यह कुण्डली महान् नीतिज्ञ महामन्त्री सर सी० पी० की है। इसमे चन्द्र से द्वितीय तथा द्वादश क्रमश. बुध तथा शुक्र बैठ कर दुरुधरा योग की सृष्टि कर रहे हैं।

कुं० स० ४४
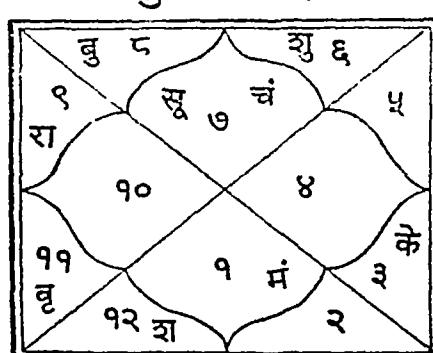
उदाहरण (२)—एक और उदाहरण इसी "दुरुधरा" योग का प्रेजिडेन्ट आईजेनहोवर की कुण्डली (मीन लग्न) द्वारा उपस्थित है। यहाँ भी चन्द्र के एक ओर शुभ ग्रह बुध और दूसरी ओर शुभ ग्रह शुक्र होने से इस योग का निर्माण हो रहा है।
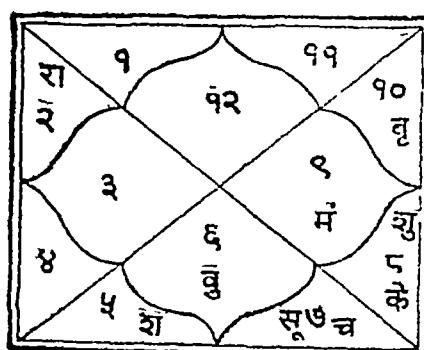
: २३ :

द्वादश शुक्र योग

परिभाषा—यदि शुक्र द्वादश स्थान मे हो तो धन तथा स्त्री के लिए शुभ है और "द्वादश शुक्र" का योग बनाता है।

फल—जैसा ऊपर कहा है द्वादश मे शुक्र स्त्री की आयु को बढाने वाला तथा धन एश्वर्य प्रदान करने वाला होता है।

हेतु—शुक्र भोगात्मक ग्रह है, द्वादश भोग स्थान है, अत शुक्र की द्वादश भाव मे स्थिति शुक्र के अनुकूल बैठती है। अब चूंकि शुक्र 'स्त्री' का कारक है अतइस योग द्वारा स्त्री का दीर्घायु हो जाना युक्तिः युक्त है। द्वादश शुक्र से भोगो की प्राप्ति भी इसी प्रकार सिद्ध है।

शास्त्रोक्ति—(क) **कथितैर्नियमैरेवं द्वादशस्थानगो भृगु ।**
अन्त्यपेन च सयुक्तो विशेषेण धनदायक ॥

(होरा शतक—४२)

भोगात्मक ग्रह के भोगात्मक स्थान को प्राप्त करने रूपी साहृश्य सिद्धान्त (The principle of Similarity) के अनुरूप द्वादश भाव मे स्थित शुक्र, द्वादशाधिपति से युक्त विशेष धन दाता होता है।

(ख) **मेषे जातस्य धनपो व्ययस्थोऽपि कवि शुभ ।**
इतर ऋक्षे तु जातस्य व्ययस्थो धनपोऽशुभ ॥

(भावार्थ रत्नाकर १-७)

केवल मेष लग्न वालो के लिये ही द्वितीयाधिपति द्वादश में प्राप्त होकर शुभ होता है। शुक्र से अन्य द्वितीयाधिपति द्वादश मे अशुभ फल करता है।

कु० सं० ४५

उदाहरण—यह कुण्डली सम्राज्ञी विक्टोरिया की है जिस ने ४० वर्ष राज्य किया, यहाँ शुक्र तीनों लग्नो से द्वादश स्थान मे स्थित होकर जहाँ स्वय वली है वहा तीनों लग्नों को अपनी द्वादश स्थिति द्वारा बल दे रहा है। शुक्र के वलवान् होने के दो कारण और भी है—

(क) बृहस्पति का शुक्र से दशम होना। (ख) शुक्र का अपनी राशि तुला को देखना और उसका लाभ लग्न को भी पहुँचना।
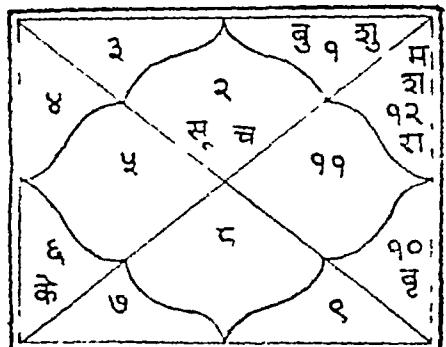
: २४ :

दिग्बल योग

परिभाषा—शनि ग्रह को छोड़ कर जब चार अथवा पाँच ग्रह "दिक् वल" से युक्त हो तो साधारण मनुष्य भी राजा की पदवी को प्राप्त करता है। यदि दो अथवा तीन ग्रह दिग्बल से युक्त हो तो राजवश में उत्पन्न पुरुष राज पदवी को प्राप्त करता है।

लग्न में स्थित होने से बुध तथा गुरु को दिग्बल की प्राप्ति होती है, शुक्र तथा चन्द्र यदि चतुर्थ स्थान मे स्थित हों तो इनको दिग्वल प्राप्त होता है शनि यदि कुण्डली मे सप्तम स्थान मे स्थित हो तो उसे वहा दिग्बल मे वली माना है। इसी प्रकार दशम भाव मे यदि मंगल अथवा सूर्य स्थित हों तो इनको उस स्थान में दिक् वल (Directional Strength) की प्राप्ति होती है।

फल—राजपदवी की प्राप्ति।

हेतु -जब ग्रहो को दिशा की अनुकूलता प्राप्त होती है तो उनमें एक विशेष प्रकार के बल की सृष्टि होती है। ग्रह जब बली होते है तो मनुष्य को मान, धन, पदवी राज्य सब कुछ देते हैं। अत: जब चार अथवा पाँच ग्रह दिक्‌बल से बली होगे तो स्पष्ट है कि कुण्डली के बहुत ग्रहो के बली हो जाने के कारण और उनकी केन्द्र स्थिति के कारण कुण्डली का स्तर ऊँचा हो जायेगा। पूर्व दिशा गुरु बुध के लिये, उत्तर दिशा चन्द्र तथा शुक्र के लिए, पश्चिम दिशा शनि के लिये, और दक्षिण दिशा मगल तथा सूर्य के लिये अनुकूल है और कुण्डली मे प्रथम, चतुर्थ, सप्तम तथा दशम केन्द्र इन दिशाओं को क्रमश दिखलाते हैं।

शास्त्रोक्ति—द्वौ वा त्र्याद्या: दिग्बलयुक्ता यदि जात,

क्ष्माभृद् वशे भूमिपति स्यात् जयशील: ।

हित्वा मन्दं पचखगा दिग्बलयुता-

श्चत्वारो वा भूपतिरन्यान्वय-जोऽपि ॥

(फलदीपिका ६-४)

अर्थात—दो या तीन ग्रह यदि दिग्बल से युक्त हों तो राजवश में उत्पन्न मनुष्य को राज्य की प्राप्ति होती है और शनि को छोडकर यदि चार अथवा पाँच ग्रह दिग्बल से युक्त हो तो साधारण कुल मे उत्पन्न व्यक्ति भी राजा की पदवी को पा जाता है।

कु० स० ४६
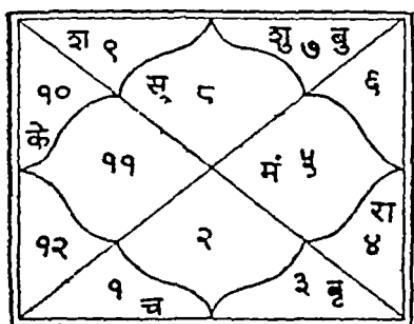
उदाहरण—वृश्चिक लग्न की श्री सी० आर० दास (बंगाल) नेता की कुण्डली देखिये। इस कुण्डली मे यद्यपि केवल एक मङ्गल ग्रह ही दिक्-बल से युक्त है क्योकि वह दशम स्थान मे स्थित है परन्तु इस अकेले ही मङ्गल के दिग्बल से युक्त होकर बैठने से कुण्डली का स्तर बहुत ऊँचा

उठ गया है कारण यह है कि मङ्गल न केवल लग्न का ही मालिक है अपितु सूर्य लग्न का भी और चन्द्र लग्न का भी स्वामी है । इस प्रकार सब लग्नों का स्वामी होकर प्रमुख केन्द्र में मङ्गल का दिग् बल को प्राप्त होना लग्नों को बहुत ऊँचा उठाता है। कहते है कि सी० आर० दास तीस-तीस, चालीस हजार रुपये मुकदमे की फीस लिया करते थे और वह भी उन दिनों जब रुपये का मूल्य सस्ता नहीं था ।निष्कर्ष यह कि यहां मानों तीन-चार ग्रह दिग्बल को प्राप्त कर रहे हैं और धन मान को बढा रहे हैं।

: २५ :

दीर्घ-आयु-योग

आयु के द्योतक अंग—जब आयुद्योतक अङ्ग (Factors) बलवान् हो तो मनुष्य की दीर्घ आयु कहनी चाहिये । शास्त्रों के अनुसार आयु के द्योतक निम्नलिखित अङ्ग है :—(क) लग्न तथा लग्नेश । (ख) अष्टम भाव तथा अष्टमेश । (ग) तृतीय भाव (अष्टम से अष्टम होने के कारण) तथा अष्टमेश । (घ) शनि—(आयुष्य कारक है) ।

उपर्युक्त अङ्ग जितने निर्बल होते जावेगे व्यक्ति की आयु उतनी ही अल्प होती चली जावेगी । मोटे रूप से जब दो अङ्ग बलवान् हों तो अल्पायु, जब तीन बलवान् हो तो मध्यायु और चारों के चारो अङ्ग बलवान् हो तो दीर्घायु कहनी चाहिये । ३२ वर्ष तक अल्प, ६४ वर्ष तक मध्यम और ६४ वर्ष के उपरान्त दीर्घ आयु मानी गयी है ।

परन्तु आयु विचार मे **चन्द्र तथा बुध** का विशेष विचार कर लेना चाहिये । यदि चन्द्र अतीव निर्बल हो तो मनुष्य की बाल्यावस्था ही में मृत्यु हो जाती है । इसी प्रकार यदि बुध लग्नाधिपति अथवा अष्टमाधिपति अथवा तृतीयाधिपति होकर अतीव निर्बल हो तो भी मनुष्य बहुत अल्प आयु पाता है ।

अंतिम निर्णय—आयु का अन्तिम निर्णय प्राप्त खण्ड (अल्प-मध्यम अथवा दीर्घ) मे मारकेश की दशा अन्तर्दशा द्वारा करना चाहिए ।

शनि का प्रभाव—'शनि' आयुष्य कारक है इसमे पाराशर का प्रमाण है :—

'ग्रहेषु मंदो वृद्धोऽस्ति आयुवृद्धिप्रदायक ।
नैसर्गिके बहुसमा: ददाति द्विजसत्तम.'

अर्थात्—ग्रहो मे शनि बूढा है । यह ग्रह आयु का कारक है और यदि बलवान् हो तो आयु की वृद्धि प्रदान करता है ।

: २६ ·

नीच भंग राजयोग

परिभाषा—जन्म कुण्डली में जो ग्रह नीच राशि मे स्थित हो यदि उस नीच राशि का स्वामी अथवा उस राशि का स्वामी जहाँ वह नीच ग्रह उच्च होता है यदि लग्न से अथवा चन्द्र लग्न से केन्द्र मे स्थित हो तो धार्मिक राजाधिराज बनाता है ।

(ख) जो ग्रह नीच राशि मे स्थित है यदि उस नीचराशि का स्वामी उस नीच राशि को देखता हो तो मनुष्य राजा होता है और यदि वह नीच राशि केन्द्र आदि शुभ स्थानो मे स्थित हो तब तो राजाओ मे भी मुख्य राजा होता है ।

फल—राजा की पदवी अथवा राजाधिराज की पदवी की प्राप्ति ।

हेतु—हम "आधारनियमो" के सन्दर्भ मे नियम सख्या दो मे इस बात का उल्लेख कर चुके है कि जो भावादि निज स्वामी से युक्त अथवा दृष्ट होता है उस भाव की वृद्धि होती है । अत स्पष्ट है कि जब किसी नीचस्थ ग्रह की नीच राशि को उस नीच राशि का स्वामी

देखेगा तो उस भाव आदि की वृद्धि होगी जिस मे कि वह नीच राशि स्थित है। इस प्रकार नीचता का भंग होकर राज्य प्राप्ति होगी।

दूसरी स्थिति नीचता के नाश अथवा भंग की यह है कि नीच राशि का स्वामी लग्न अथवा चन्द्र से केन्द्र मे स्थित हो। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में नीच राशि के स्वामी को बल मिलेगा। अब चू कि भाव आदि को बल मिलने का एक मार्ग यह भी है कि जहाँ उनके स्वामी स्थित हों उस राशि का स्वामी बलवान् हो। अतः इस नियम के अनुसार नीच ग्रह को तथा उस भाव को जिस भाव का कि वह नीच ग्रह स्वामी है बल मिल जावेगा, यदि उक्त नीच ग्रह की नीच राशि का स्वामी किसी प्रकार भी बली हुआ।

एक और दशा ऐसी कही है जिस से नीच भङ्ग होता है। वह यह कि जब उस नीच ग्रह की उच्च राशि का स्वामी बली हो तो जैसे गुरु मकर मे नीचस्थ हो और चन्द्र लग्न से केन्द्र में पड़ जावे तो गुरु की उच्च राशि के स्वामी चन्द्र की केन्द्र स्थिति के कारण गुरु बलवान् हो जावेगा। कुछ विद्वानो का विचार यह भी है कि यदि वह ग्रह जिसके लिये विचाराधीन नीच राशि उच्चराशि बनती है, केन्द्र में हो तो भी नीचता का भग होता है। परन्तु इन दो दशाओं में क्यों ऐसा होता है यह हमे स्पष्ट नही है।

कुं० स० ४७

उदाहरण—यह कुण्डली परशिया के शाह की है। यहा शासन भाव (द्वितीय) का स्वामी तथा राज्य कारक स्वय सूर्य नीच राशि का है। परन्तु जिस राशि मे यह नीच है अर्थात् तुला उसका स्वामी शुक्र, चन्द्र से दशम केन्द्र में विद्यमान होने से सूर्य को तथा द्वितीय स्थान को नीचता भग राजयोग का लाभ प्राप्त हुआ है। इसी प्रकार चू कि सूर्य (नीच ग्रह) की उच्च
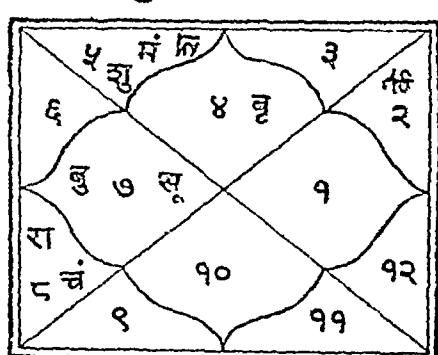
राशि मेष का स्वामी मङ्गल भी चन्द्र से केन्द्र मे है वह भी इस प्रकार नीचता भग करके राजयोग प्रदान कर रहा है।

देवकेरल कार का कहना है कि —

"नीचस्तु नीचाधिपतेर्यदि स्यात्
केन्द्रे स्थितं नैवमुपेति भगम्

अर्थात् यदि ग्रह की नीच राशि का स्वामी तो केन्द्र मे हो परन्तु हो अपनी नीच राशि मे तो नीचता भग राजयोग की उत्पत्ति न होगी। इसका उदाहरण जैसे गुरु मकर राशि मे नीच हो और नीच राशि का स्वामी शनि लग्न अथवा चन्द्र से केन्द्र मे तो हो परन्तु हो मेष राशि का, तब गुरु को नीचता भङ्ग प्राप्त न होगा।

शास्त्रोक्ति—(क) नीचस्थितो जन्मनि यो ग्रह. स्यात्,
तद्राशिनाथोऽथ तदुच्चनाथ ।
स चेद् विलग्नाद् यदि केन्द्रवर्ती
राजा भवेद् धार्मिकचक्रवर्ती" ॥
(फलदिपिका ७-२६)

इस श्लोक का अर्थ ऊपर परिभाषा के सामने (क) मे देखे।

(ख) यस्मिन् राशौ वर्तते खेचरस्तद्
राशीशेन प्रे क्षितश्चेत् स खेट ।
क्षोणिपाल कीर्तिमन्तं विदध्यात्,

इस श्लोक का अर्थ हम ने 'परिभाषा' के सामने (ख) मे ।
है।

:२७:

पति-त्याग-योग

परिभाषा—एक स्त्री की कुण्डली मे जब पति-द्योतक अ ग
अर्थात् सप्तम भाव, सप्तमाधिपति तथा सप्तम कारक अर्थात् गृ
स्पति पर "त्यागात्मक" अथवा पृथक्ताजनक ग्रहो सूर्य, शनि, रा
अथवा इनसे अधिष्ठित राशियो के स्वामियो का प्रभाव हो तो

स्त्री का उसके पति से वियोग हो जाता है अर्थात् तलाक तक हो सकता है।

हेतु—सूय, शनि, राहु, द्वादश स्थान—ये सब पृथकता (Separation) उत्पन्न करते है। इसी प्रकार इन से अधिष्ठित राशियों के स्वामी भी जहां युति अथवा दृष्टि द्वारा प्रभाव डालते है उस स्थान, सम्बन्धी आदि से मनुष्य को पृथक् कर देते है। अतः स्पष्ट है कि जब पति-द्योतक सभी अङ्गो पर पृथक्ता का प्रभाव पड़ेगा तो पत्नी पति से पृथक् (त्यक्त) हो जावेगी।

शास्त्रोक्ति—इस विषय मे निम्नलिखित शास्त्रवचन द्रष्टव्य है :—

(१) छायात्मजपंगुदिवाकरेषु,खेटद्वयो दिशति यत्र निजं प्रभावम्।
नूनं पृथक्तां विषयाद्धि तस्माद् दशमे यथा राजसंन्यासमाहु.।

(होराशतक पृ०-१०)

अर्थात्—राहु, शनि तथा सूर्य में से दो ग्रह जहाँ निज प्रभाव को डाले मनुष्य को उस स्थान सम्बन्धी बातो से पृथक् कर देते हैं। जैसे—जब इनका प्रभाव दशम स्थान पर हो तो मनुष्य को राज्य छोड़ना पडता है।

(२) सूर्येऽस्तभे पतित्यक्ता—

अर्थात्-- जिस स्त्री की कुण्डली मे **सूर्य** सप्तम स्थान में हो वह स्त्री **पतित्यक्ता** होती है।

(३) नि.श्रीक· परिभूत. कुशरीरो व्याधित पुमानर्थ्ये।
नृपवन्धनसंतप्तोऽमार्गरतो युवतिविद्वेषी ॥

अर्थात् जिस मनुष्य के द्वितीय भाव मे सूर्य हो, वह मनुष्य धन-रहित, हार खाने वाला, भद्दे शरीर वाला, मजबूर, राजबन्धन में पडने वाला, कुमार्गगामी ओर स्त्री से द्वेष रखने वाला होता है।

कु० सं० ४८

उदाहरण—इस स्त्री का त्याग इस के पति द्वारा विवाह के शीघ्र बाद ही कर दिया गया था। यहाँ बृहस्पति न केवल सप्तम स्थान का स्वामी है बल्कि स्त्री का "पति" रूप से कारक भी है। यह गुरु तीन पापी ग्रहो के प्रभाव मे है अर्थात् सूर्य, केतु तथा सूर्ययुक्त क्षीण चन्द्र। राहु तथा सूर्य का पृथक्ताजनक प्रभाव जब पतिद्योतक तथा सप्तमाधिपति गुरु पर पडेगा तब यह पृथक्ता घटित हुई।

कु० स० ४९
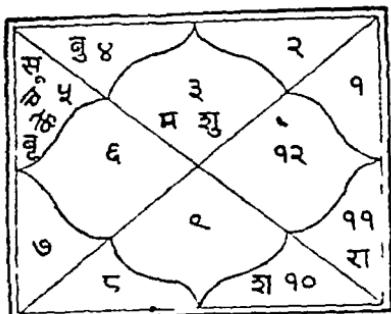
उदाहरण (२) यह एक स्त्री की कुण्डली है जिसमे विवाह के थोडे ही समय के अनन्तर इस स्त्री को इसके पति ने त्याग दिया। सप्तम भाव पर तो पृथक्ताजनक राहु तथा शनि दोनो की पूर्ण दृष्टि है और सप्तमेश सूर्य तथा पति कारक गुरु दोनो इकट्ठे हैं और दोनो पर पुन शनि की पृथकताजनक पूर्ण दृष्टि है। दूसरे शब्दो में सप्तम भाव, उसका स्वामी तथा उसका कारक तीनो-के तीनो शनि, राहु के पृथक्कारी प्रभाव मे है जिसका फल "स्त्री त्याग" निकला।

२८

पत्नी-त्याग-योग

परिभाषा—पुरुष की कुण्डली मे जब पत्नी-द्योतक अङ्गो अर्थात् सप्तम भाव, सप्तमाधिपति तथा सप्तम कारक अर्थात् शुक्र पर "त्यागात्मक" अथवा पृथक्ताजनक ग्रहो सूर्य, शनि, राहु, अथवा इन

से अधिष्ठित राशियों के स्वामियो का प्रभाव हो तो पुरुष का उसकी स्त्री से वियोग हो जाता है।

हेतु—सूर्य, शनि, राहु, द्वादश स्थान ये सब पृथक्ता (Seperation) उत्पन्न करते है। इसी प्रकार इनके स्वामी भी जहां अपनी युति अथवा दृष्टि द्वारा प्रभाव डालते है उस स्थान सम्बन्धी आदि से मनुष्य को पृथक् कर देते है। अत. स्पष्ट है कि जब पत्नी-द्योतक सभी अङ्ग पृथक्ता के प्रभाव को अपने ऊपर लेगे तो पत्नी से पृथक्ता हो जायेगी।

उदाहरण—इस व्यक्ति का विवाह २० वर्ष के लगभग हुआ था। २० वर्ष की आयु मे ही उसका पत्नी से वियोग हो गया और १९६९ मे मृत्यु पर्यन्त उसका अपनी पत्नी से वियोग ही रहा, देखिये गुरु सप्तमाधिपति है और शुक्र सप्तम कारक अर्थात् पत्नी कारक;

कु० सं० ५०

दोनो इकट्ठे हैं और दोनो पर सूर्य का प्रभाव है। जैसा कि हम कई बार लिख चुके हैं, सूर्य एक पृथक्ताजनक ग्रह है। और यहाँ तो त्याग और व्यय के घर का स्वामी होन से और भी अपने अन्दर पृथक् कर डालने की शक्ति रखता है। इस के अतिरिक्त यह सूर्य, केतु-अधिष्ठित राशि का स्वामी भी है अर्थात् केतु का पृथक्ताजनक प्रभाव भी अपने अन्दर रखता है। इस प्रकार सूर्य कई रूपो से अपने अन्दर पृथक् करने की शक्ति लिये हुए है। वह सूर्य शनि की शत्रु राशि मे अप्रसन्न होकर गुरु तथा शुक्र को अर्थात् पत्नी को पीड़ित करता हुआ पत्नी से पृथक्ता उत्पन्न कर रहा है।
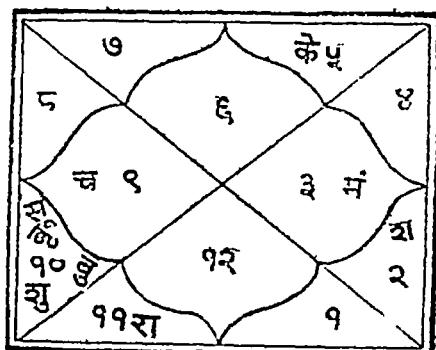
: २६ :

पत्नियों की मृत्यु का योग

परिभाषा—जब द्वितीयाधिपति तथा द्वितीय भाव, स्थिति आदि से बलवान् हों परन्तु मङ्गल की पर्याप्त दृष्टि में हो तो एक के बाद दूसरी पत्नी प्राप्त होती चली जाती है और मरती चली जाती है।

हेतु—द्वितीय भाव सप्तम भाव से अष्टम होने के कारण स्त्री का सदा आयु स्थान होता है। इस भाव पर अथवा इसके स्वामी पर शुभ दृष्टि का अर्थ यह होगा कि पत्नी की आयु है परन्तु मङ्गल की दृष्टि का अर्थ होगा कि पत्नी की आयु नही है। दोनो बातो का समन्वय इस प्रकार होगा कि पत्नी मरती तो हो परन्तु पुन प्राप्त होती चली जाती हो।

कु० सं० ५१
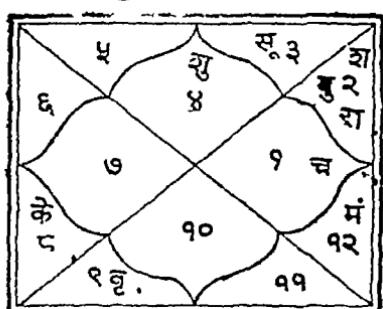
उदाहरण—जिस व्यक्ति की यह कुण्डली है उसकी क्रमश छ शादियाँ हुई। इस कुण्डली मे द्वितीयाधिपति सूर्य पर एक प्रबल गुरु की दृष्टि है परन्तु साथ ही द्वितीय भाव तथा उसके स्वामी सूर्य पर मङ्गल की दृष्टि है। परिणाम क्रमश छ पत्नियो की प्राप्ति हुआ।

(ii) "**फलदीपिकाकार**" ने पत्नी की मृत्यु निम्न प्रकार से बतायी —

दैत्यामात्ये सुदरी मंदिरस्थे।
दोषानाथे द्वादशे दारहता ॥ (फलदीपिका)

अर्थात् जब शुक्र सप्तम स्थान मे हो और चन्द्र द्वादश मे तो मनुष्य की स्त्री दीर्घ जीवी नही होती। मोटी नजर से इस योग मे

पत्नी की स्वल्प आयु का कोई कारण दृष्टि गोचर नही होता परन्तु यह एक अनुभव सिद्धतथ्य है कि चन्द्र जिस भाव से छठे बैठता है उसके जीवन की प्राय. हानि करता है इसीलिये चन्द्र की दशम भाव मे स्थिति के सबन्ध में शास्त्रकार कहते है कि यह स्थिति प्रथम पुत्र की आयु की हानि करती है। इसी सिद्धान्त को जब हम उपर्युक्त श्लोक पर लगाते है तो पाते है कि चन्द्र न केवल स्त्री के भाव सप्तम से छठे पड़ेगा अपितु स्त्रीकारक शुक्र से भी। ऐसी स्थिति में यदि पत्नी को स्वल्प आयु मिले तो यह परिणाम उक्त सिद्धान्तानुकूल ही है।

शास्त्रोक्ति—"वैधव्यं निधने चिन्त्यं, शरीर जन्मलग्नत.॥"

(सारावली, ४५—१)

इस प्रकार स्त्रीजातक प्रकरण में सारावलीकार कहते हैं कि स्त्री का वैधव्य अष्टम स्थान से देखना चाहिये। यहाँ हमारा विचार है कि अष्टम भाव की महत्ता इसलिये है कि इस मे बैठा पापी ग्रह द्वितीय भाव को अपनी पूर्ण दृष्टि से प्रभावित करता है और द्वितीय भाव सप्तम से अष्टम होने के कारण स्त्री के पति का आयु स्थान होता है।

: ३० :

प्रव्रज्या-योग

परिभाषा—प्रव्रज्यायोग निम्न स्थितियो में होता है:—

(क) यदि एक ही भाव मे चार अथवा चार से अधिक ग्रह स्थित हो तो मनुष्य सन्यासी होता है और सन्यास में किस प्रकार की दीक्षा लेता है इस बात का निर्णय, उन चार ग्रहों में से जो सबसे वली हो उस के अनुसार करना चाहिये।

(ख) यदि दशमेश भी उन चार ग्रहों में से एक हो तो, कुछ एक का कहना है कि, दशमेश ग्रह के अनुकूल दीक्षा का प्रकार होगा

(ग) यदि चन्द्र शनि के द्रेष्टकाण मे स्थित हो और शनि तथ मङ्गल द्वारा दृष्ट हो तो सन्यासी (तापस) होता है।

(घ) यदि चन्द्र, मङ्गल के नवाँश मे स्थित हो और शनि द्वारा दृष्ट हो तो मनुष्य मङ्गल प्रदिष्ट सन्यासियो की श्रेणी मे प्रवेश करता है।

(ड) यदि जन्म कुण्डली मे चन्द्राधिष्ठित राशि का स्वामी केवल मात्र शनि द्वारा दृष्ट हो तो चन्द्राधिष्ठित राशि के स्वामी के अनुकूल दीक्षा को पाता है।

फल—उपर्युक्त सन्यास तथा तापस योगो के कारण मन मे वैराग्य की भावना तथा शरीर मे तपस्या के लक्षण उपस्थित होते हैं।

हेतु—जहाँ तक "प्रवज्या" योग की मूल परिभाषा का सम्बन्ध है हम इस योग के लिये कोई सङ्गत हेतु उपस्थित करने मे असमर्थ है हमारे निजी विचार मे केवल चार अथवा चार से अधिक ग्रहो का है, एकत्रित हो जाना किसी प्रकार से भी सन्यास अथवा तपस्या का हेतु नही हो सकता। यदि आप विख्यात सन्यासियो की कुण्डलियो का अध्ययन करे तो आप को पता चलेगा कि शायद ही कोई कुण्डली ऐसी हो जिसमे चार ग्रह इकट्ठे हो। अत अनुभव भी उक्त योग को पुष्टि प्रदान नही करता। हाँ (ग) से (घ) तक ऊपर वर्णित योग बहुत हद तक सन्यास के योग कहे जा सकते हैं क्योकि सभी योगो मे चन्द्र का, जो कि मन का प्रतिनिधि है, शनि से प्रभावित होना अपेक्षित है। यही प्रभाव मन मे वैराग्य की सृष्टि करता है जो कि सन्यास के लिये आवश्यक है। इस बात को हम यदि मौलिक रूप से समझने का प्रयत्न करे तो कह सकते है कि जब शनि, राहु, सूर्य, द्वादशेश आदि "पृथक्ताजनक" ग्रहो का प्रभाव मनुष्य की जन्म कुण्डली के द्वितीय, चतुर्थ तथा द्वादश भाव तथा इन भावो के स्वामियो पर हो तो मनुष्य सन्यास को प्राप्त होता है और इस संन्यास मे तब वैराग्य भी सम्मिलित होगा जबकि चन्द्र पर अथवा चतुर्थ, चतुर्थेश

पर शनि का वैराग्यात्मक प्रभाव भी हो; क्योकि जब तक मनुष्यी कुटुम्ब (द्वितीय भाव) से, तथा सबन्धियो एव घर बार से (चतुर्थ भाव से) तथा भोग सामग्री से (द्वादश भाव से) पृथक् न हो सन्यासी वन ही नही सकता।

शास्त्रोक्ति— (क) एकर्क्षसंस्थैश्चतुरादिकैस्तु,
ग्रहैर्वदेत्तत्र बलान्वितेन ।
प्रव्रज्यकां तत्र वदति केचित्,
कर्मेशतुल्यां सहिते खनाथे ॥ (फलदीपिका २७-२)

देखिये—परिभाषा (क) तथा (ख)।

(ख) राशीशदृगणे रविजस्य सस्थित, कुजार्किदृष्ट. प्रकरोति तापसम्।
कुजाँशके वा रविजेन दृष्टो नवाँशतुल्याँ कथयन्ति तां पुन ॥
(फलदीपिका २७—३)

देखिये—परिभाषा (ग) तथा (घ)।

(ग) जन्माधिपः सूर्यसुतेन दृष्ट, शेषैरदृष्ट. पुरुषस्य सूतौ।
आत्मीयदीक्षां कुरुते ह्यवश्य, पूर्वोक्तमत्रापि विचारणीम् ॥
(फल दी. २७—४)

देखिये—परिभाषा (ङ)।

उदाहरण —(क) यह कुण्डली ज्ञानमूर्ति पूज्य मुनिवर श्री स्वामी रामतीर्थ जी महाराज की है। कुटुम्ब से पृथक्ता तो इसलिये हुई कि कुटम्व (द्वितीय) स्थान मे पृथक्ताजनक राहु विद्यमान है और शनि की द्वितीय भाव से केन्द्र मे स्थिति भी वही कुटुम्ब से पृथक्ता का कार्य कर रही है। द्वितीयाधिपति मङ्गल पर भी राहु की नवम दृष्टि है। चतुर्थभाव पर राहु अधिष्ठित राशि के स्वामी मङ्गल की पूर्ण दृष्टि है और चतुर्थेश बुध, केतु, सूर्य तथापापी चन्द्र से युक्त पृथक्ता-जनक शनि से पूर्ण दृष्ट है। इस प्रकार परिवार गृह, जायदाद से

कु० स० ५२
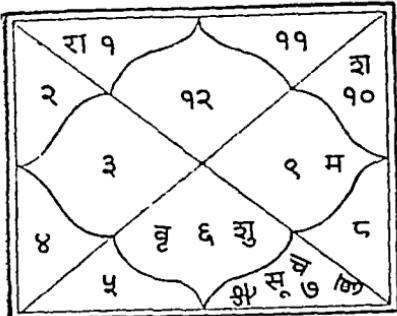
पृथक्ता हुई। इसी प्रकार द्वादश भाव पर केतु की पचम दृष्टि है और इस दृष्टि में सूय आदिपापी तथा पृथक्ता-जनक ग्रहो का प्रभाव सम्मिलित है। द्वादशेश शनि पर भी सूर्य आदि पृथक्-ताजनक ग्रहो का केन्द्रीय प्रभाव है। इस प्रकार द्वादश स्थान तथा उसके स्वामी का पृथक्ताजनक ग्रहो के प्रभाव मे आना भोगो (Pleasures of the bed) से पृथक्ता दिलाता है। रह गई मानसिक वैराग्य की बात तो देखिये बुद्धि के द्योतक बुध की ओर जो मन (Emotion) का (चतुर्थ भाव का) स्वामी होता हुआ मन के कारक चन्द्र के साथ है और दोनो पर शनि की पूर्ण तथा प्रबल दृष्टि है। इस दृष्टि के फलस्वरूप श्री स्वामी जी के मन मे उत्तम वैराग्य की सृष्टि हुई। इस प्रकार इस कुण्डली मे त्याग और वैराग्य दोनो का आधिक्य उपस्थित है जो "प्रव्रज्या-योग" बनाता है।

कु० स० ५३
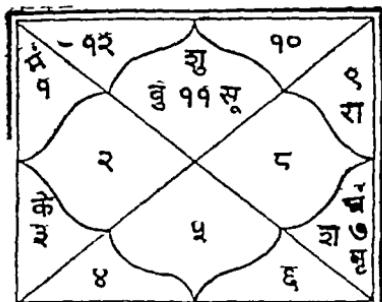
उदाहरण—(ख) इसी सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द की कुण्डली (कु भ लग्न) का भी अवलोकन कीजिये। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं द्वितीय (कुटम्ब) चतुर्थ (घर घाट) तथा द्वादश (भोग विलास) से पृथक्ता तथा मन मे वैराग्य का होना सन्यास कहलाता है। यह कुण्डली भी इस परिभाषा (Definition) को पूरा करती है क्योकि द्वितीव भाव पर सूर्य मगल का पाप मध्यत्व है चतुर्थ भाव पर मगल केतु का पाप मध्यत्व है। और द्वादश भाव पर सूर्य तथा राहु का पाप मध्यत्व है। इतना ही नही चतुर्थाधिपति शुक्र पर सूये की युति केतु की दृष्टि तथा केतु

अधिष्ठित राशि के स्वामी बुध का योग सभी पृथक्ताजनक प्रभाव है जो घर से (चतुर्थभाव) निकालने के प्रभाव है। गुरु की शुक्र पर दृष्टि अवश्य है पर गुरु एक प्रबल मङ्गल की दृष्टि मे होने के कारण शनि से युक्त होने के कारण तथा केतु से दृष्ट होने के कारण अपने शत्रु शुक्र को कोई लाभ नही पहुँचा सकता। और उधर द्वादशेश शनि तथा द्वितीयेश गुरु दोनो पर मगल की तथा केतु की पूर्ण दृष्टि है जिसके कारण कुटुम्ब तथा भोगो से पृथक्ता भी सिद्ध होती है। चन्द्र पर शनि का प्रभाव मन मे वैराग्य तो उत्पन्न कर ही रहा है। इस प्रकार प्रवज्या अथवा सन्यास योग सिद्ध होता है।

: ३१ :

पर्वतयोग

परिभाषा—(क) लग्न से केन्द्र घरों में शुभ ग्रह स्थित हों छठा तथा आठवां भाव ग्रहों से या तो खाली हो या इन दोनों में शुभ ग्रह स्थित हो तो **'पर्वत योग'** बनता है।

(ख) लग्न तथा द्वादश भाव का स्वामी यदि एक दूसरे से केन्द्र मे हो और मित्रों से दृष्ट हो तो भी **पर्वत योग** बनता है।

(ग) यदि लग्नाधिपति द्वारा अधिष्ठित राशि का स्वामी उच्च राशि का अथवा स्वक्षेत्र का होकर केन्द्र अथवा त्रिकोण में हो तो "पर्वत" नाम का योग बनता है।

उपर्युक्त परिभाषाओ (क) तथा (ख) की पुष्टि निम्नलिखित शास्त्रोक्ति से होती है :—

शसात्रोक्ति—(१) सौम्येषु केन्द्र गृहगेषु सपत्नरन्ध्रे,
शुद्धेऽथवा शुभयुते यदि पर्वत· स्यात्।
लग्नान्त्यपौ यदि परस्परकेन्द्रयातौ,
मित्रेक्षितौ भवति पर्वत नाम योग· ॥

(जा पारि. ७-१२८)

सूचना—द्वादशाधिपति के लग्नेश को प्रभावित करने से कैसे राज-योग की सृष्टि हो सकती है यह बात समझ में नही आती, क्योंकि द्वादश भाव तो अनिष्टकारी है। हाँ यदि लग्नेश के द्वादश पर प्रभाव से भोगो की सृष्टि अथवा उत्पत्ति हो तो यह बात समझ मे आ सकती है—क्योकि, पाराशरीय नियमो के अनुसार द्वादशेश स्वतन्त्र कर्त्ता नही है, वह 'स्थानानुगुण्येन' काम करता है।

उपर्युक्त की (ग) परिभाषा के विषय मे फलादीपिकाकार अध्याय ६, श्लोक ३५ मे इस प्रकार लिखते हैं। यह श्लोक हमारी उपर्युक्त (ग) परिभाषा को पुष्ट करता है .—

शास्त्रोक्ति—(२) **लग्नाधिपाप्तभपतिस्थितिराशिनाथ,**
स्वोच्चस्वभेषु यदिकोण चतुस्थ।
योग स काहल इति प्रथितोऽथ तद्वत्,
लग्नाधिपाप्तभपतिर्यदि पर्वताख्य॥

फल—अर्थ सौख्य से स्थिर रूप से समन्वित राजा होना।

हेतु—जैसा कि हम आधार नियम सख्या एक मे दिखला चुके हैं ज्योतिष का यह एक मौलिक सिद्धान्त है कि जिस भाव अथवा ग्रह से केन्द्र मे, और विशेषतया दशम केन्द्र मे, कोई ग्रह बैठा है उस ग्रह का प्रभाव उस भाव अथवा ग्रह पर पडता है जिससे केन्द्र मे वह प्रभाव डालने वाला ग्रह स्थित है। इसी नियमानुसार जब लग्न से केन्द्र मे शुभ ग्रह होगे तो लग्न का बलवान् होना निश्चित हो जायेगा अब यदि लग्न से छठे, आठवे भी शुभ ग्रह स्थित हो तो उन शुभ ग्रहो का प्रभाव लग्न के आस-पास पडने से लग्न को मिलेगा। इससे लग्न दुगना बलवान् होगा। लग्न तो राज्य का प्रतिनिधि है ही, अत उपर्युक्त शुभ प्रभाव राज दिलावेगा।

कुं० स० ५४

उदाहरण (१) यह एक सज्जन की कुण्डली है जो आयुभर धन से खेलते रहे। यहाँ प्रथम, तथा सप्तम केन्द्र मे भी शुभ ग्रह चन्द्र तथा बुध है और छठे तथा आठवे भी शुभ ग्रह शुक्र तथा गुरु, है। अत पर्वत योग बनता है।

कुं० स० ५५
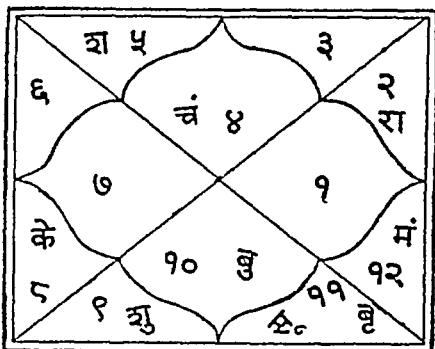
उदाहरण (२)यह एक लाखोंपति की कुण्डली है। लग्नाधिपति द्वारा अधिष्ठित राशि मकर का स्वामी शनि प्रमुख केन्द्र में अपनी ही राशि मकर में स्थित है। बल्कि गुरु-दृष्ट है। अतः पर्वत योग बन रहा है।
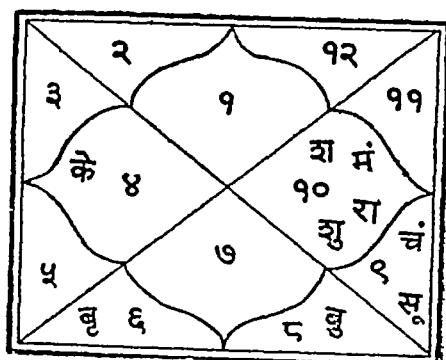
: ३२ :

प्रहार निहत योग

परिभाषा—जब शरीर के किसी अङ्ग पर निम्नलिखित ग्रहो का प्रभाव युति अथवा दृष्टि द्वारा पड रहा हो तो समझना चाहिये कि उस अंग पर चोट लगेगी। वह चोट किसी व्यक्ति द्वारा लगायी जायगी इस बात का निर्णय द्वितीयेश, चतुर्थेश तथा षष्ठेश द्वारा किया जायेगा :—

(क) मङ्गल, (ख) केतु, (ग) मङ्गल तथा केतु-अधिष्ठित राशियों के स्वामी, (घ) षष्ठेश, (ङ) एकादशेश।

फल—कुण्डली मे उपर्युक्त योग हो तो मनुष्य के शरीर के किसी अङ्ग पर कोई व्यक्ति अस्त्र से प्रहार करता है।

हेतु—मङ्गल को "जल्लादे फलक" अर्थात् दैवी हत्यारा कहते है, यह ज्योतिष शास्त्र मे प्रसिद्ध ही है। अत मङ्गल जिस भावादि पर अपना प्रभाव युति अथवा दृष्टि द्वारा डालेगा उसको चोट पहुँचेगी यह निश्चित है। ज्योतिष शास्त्र कहता है कि "शनि वत् राहु कुजवत् केतु" अर्थात् राहु के गुण-स्वभाव और क्रियाए शनि के ही गुण-स्वभाव और क्रियाओ की भाँति होते हैं और केतु के गुण-स्वभाव और क्रियाये मगल की भाँति अर्थात् मगल के गुण-स्वभाव-क्रियाओ के अनुरूप। अत केतु की जिस भाव पर दृष्टि अथवा युति होगी उस भाव को भी आघात पहुंचेगा। मगल अधिष्ठित राशि का स्वामी मगल ही की भाँति काम करता है चाहे वह नैसर्गिक शुभ ग्रह ही क्योकि न हो। जैसे—मान लीजिये कि मगल धन राशि मे स्थित है तो मगल-अधिष्ठित राशि का स्वामी गुरु, एक नैसर्गिक शुभ ग्रह होता हुआ भी, अपनी दृष्टि आदि से मगल के आघात्मक प्रभाव को लेकर ही कार्य करेगा। यही दशा केतु से अधिष्ठित राशि के स्वामी की भी होगी अर्थात् वह भी अपनी युति तथा दृष्टि द्वारा आघातात्मक प्रभाव को भावादि पर डालेगा कुण्डली का छठा घर तो आघात (चोट) के लिये प्रसिद्ध है ही। यदि षष्ठेश अपनी युति अथवा दृष्टि द्वारा चोट या आघात पहुचाये तो आश्चर्य नही मानना चाहिये। एकादशेश चूँकि छठे घर से छठे घर (भावात् भावम्) का स्वामी है वह भी षष्ठेश ही की भाति आघातात्मक रूप से कार्य करेगा। इस प्रकार उपर्युक्त पाँच प्रकार के ग्रहो का प्रभाव चोट अथवा आघात पहुँचाने वाला सिद्ध होगा। परन्तु आघात का यह योग दो अथवा दो से अधिक आघात्मक ग्रहो के प्रभाव द्वारा ही उत्पन्न होगा। जहाँ केवल एक ही आघातात्मक ग्रह का प्रभाव देखने मे आये वहा इस योग की उत्पत्ति नही कहनी चाहिये।

आघात किस से ? —अब मान लीजिये कि किसी कुण्डली में उपर्युक्त पाँच प्रकार के ग्रहों मे से तीन ग्रहों का एक ही अंग पर युति अथवा दृष्टि द्वारा प्रभाव है, तो इतना तो निश्चय हो गया कि शरीर का उक्त अग चोट खायेगा। परन्तु अब प्रश्न यह है कि वह चोट साधारण दुर्घटना (Accident) द्वारा होगी अथवा किसी व्यक्ति द्वारा जान बूझकर लगायी जायेगी। इस बात का निर्णय कुण्डली मे द्वितीयेश, चतुर्थेश तथा षष्ठेश करेगे। इसमें कारण यह है कि प्रत्येक कुण्डली मे चतुर्थ भाव जनता अथवा सर्व साधारण (Masses) का भाव है। यदि चतुर्थेश क्रूर अथवा पापी ग्रह होकर उपर्युक्त योग मे भाग लेकर शरीर पर प्रहार कर रहा है तो समझ लेना चाहिये कि उक्त आघात जनता में से किसी व्यक्ति द्वारा पहुँचाया गया है। और चूंकि किसी भी कुण्डली में तृतीयेश तथा तथा एकादशेश व्यक्ति के हाथ होते है। इस लिये द्वितीयेश तथा षष्ठेश चतुर्थ के अर्थात् जनता के उस व्यक्ति के हाथ समझे जावेगे। अत द्वितीयेश तथा षष्ठेश का उक्त पाँचों अंगों मे सम्मिलित होकर आघात को दर्शाना इस बात का इशारा होगा कि यह आघात जनता के किसी व्यक्ति के हाथों द्वारा क्रियान्वित हुआ है।

उदाहरण (१) इस योग का उदहारण महात्मा गांधी की कुण्डली उपस्थित करती है। जैसा कि हम "फलित सूत्र" तथा "ज्योतिष और रोग" आदि अपनी पुस्तकों मे उल्लेख कर चुके है किसी व्यक्ति की मृत्यु का प्रकार उसके लग्न, लग्नेश तथा अष्टम, अष्टमेश पर पड़े हुए प्रभाव द्वारा निश्चित किया जाता है। महात्मा जी की कुण्डली में इन चारों के चारो अगो पर मगल का प्रभाव है क्योंकि मगल लग्न, लग्नेश शुक्र को अपनी युति से तथा अष्टमेश तथा अष्टम भाव

कु० स० ५६
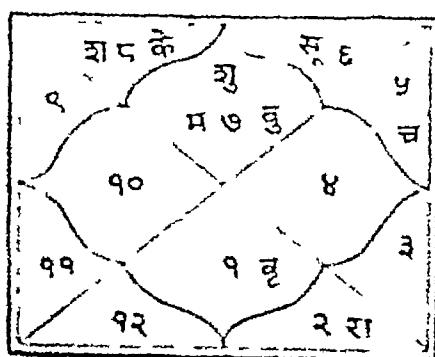
को क्रमशः अपनी युति तथा दृष्टि से प्रभावित कर रहा है और कोई अन्य ग्रह नही जिसका इन चारों पर इतना प्रभाव हो। अत मगल मृत्यु का निश्चित कारण सिद्ध होता है। अब मगल एक तो स्वय कारक रूप से ही चोट और प्रहार पहुँचाने वाला ग्रह है पर महात्मा जी की कुण्डली मे तो "एक करेला, दूसरा नीम-चढा" की लोकोक्ति को सार्थक कर रहा है क्योकि यहा मगल केतु-अधिष्ठित राशि का स्वामी भी है। अत मगल के प्रभाव मे एक दूसरे मगल अर्थात् केतु का प्रभाव भी सम्मिलित समझना चाहिये। अब प्रभावित शुक्र के आस-पास जरा दृष्टिपात कीजिये। इसको सूर्य तथा केतु ने घेरा हुआ है। केतु तो आघाताामक है ही; देखना यह है कि क्या सूर्य भी ऐसा ही है ? यदि ऐसा है तब तो शुक्र के दोनो ओर आघातात्मक ग्रह बैठ कर शुक्र पर (शरीर पर) चोट करेगे। हाँ, सूर्य भी यहाँ "आघातात्मक" है क्योकि यह एकादशेश (छठे से छठे घर का स्वामी) है।

उधर शुक्र पर गुरु की दृष्टि भी तो विचाराधीन सन्दर्भ मे हानिकारक ही है क्योकि गुरु कुण्डली मे चोट (छठे) के घर का स्वामी होकर शुक्र को देख रहा है। अब केवल बुध के शुक्र पर प्रभाव का अध्ययन शेष रह जाता है। तो देखिये कि बुध, सूर्य—अधिष्ठित राशि का स्वामी होने से सूर्य की भाँति ही आघातात्मक रूप से कार्य करेगा।

इस प्रकार हमने देखा कि एक ओर तो शुक्र मरण क्षेत्र का पूर्ण प्रतिनिधि है और दूसरी ओर मगल, केतु ,एकादशेश तथा षष्ठेश आघातात्मक रूप से चार अङ्ग (Factors) भी पूर्ण प्रतिनिधि है। ऐसी स्थिति मे महात्मा जी का किसी चोट से आहत होकर मृत्यु को प्राप्त होना तो पूर्ण स्पष्टता से दृष्टि गोचर और सिद्ध हो रहा है। अब हम को देखना यह है कि उन की मृत्यु साधारण रूप मे चोट से

जैसे गिरने आदि से होनी चाहिये थी अथवा किसी व्यक्ति के प्रहार द्वारा। तो आइये जैसा कि योग मे लिखा है हम द्वितीयेश, चतुर्थेश तथा षष्ठेश का निरीक्षण करे। हम देख चुके है कि मंगल चोट पहुँचा रहा है और मगल है द्वितीयेश अर्थात् चतुर्थ (जनता) का बाजू। यह भी ध्यान रहे कि मंगल का प्रहार शनि रूप से भी हो रहा है और शनि है चतुर्थेश अर्थात् जनता का लग्न (Self) और गुरु तो षष्ठेश है ही। इस प्रकार आघात का निश्चय करने के अनन्तर जब हमने देखा कि लग्न, लग्नेश तथा अष्टम, अष्टमेश पर जो आघातात्मक प्रहार है वह जनता के किसी व्यक्ति के निज (चतुर्थेश) द्वारा तथा उसकी बाहुओं (द्वितीयेश तथा षष्ठेश) द्वारा हो रहा है तो हमारा यह परिणाम निकालना कि महात्मा जी की मृत्यु जनता के किसी व्यक्ति द्वारा होनी चाहिये युक्ति-सगत हो जाता है। जैसा कि हम अन्यत्र लिख चुके है मङ्गल सूर्य के समीप होने से उस के गुरुत्वाकर्पण के कारण "अतिचार" मे अर्थात् तीव्रगति में है। यह बात मगल को तीव्रगति से चलने वाली कोई वस्तु जैसे पिस्तौल की गोली बना रही है। अत. महात्माजी का जनता में से किसी व्यक्ति द्वारा आघातपूर्वक मारा जाना सिद्ध हुआ। फिर यह बात भी दिलचस्पी से खाली नही है कि यह कि मारने वाला मगल, शुक्र, गुरु तथा बुध, इन तीन नैसर्गिक शुभ, बल्कि "ब्राह्मण" जाति के, ग्रहों द्वारा प्रभावित है अत. घातक उच्चजाति का कोई व्यक्ति है, यह भी ध्वनित होता है।

उदाहरण - गोली से निधन का एक और उदाहरण राष्ट्रपति केनेडी की जन्म कुण्डली उपस्थित करती है। यहाँ लग्नाधिपति बुध, अष्टम भाव में अष्टमेश के साथ है। अत. मगल तथा बुध मुख्यतया मरण विधि का क्षेत्र है। अर्थात् इन पर जो प्रभावहोगा वह मरण विधिको जतलायेगा। अब देखिये, शनि की ओर। शनि लग्न को,

कु० स० ५७
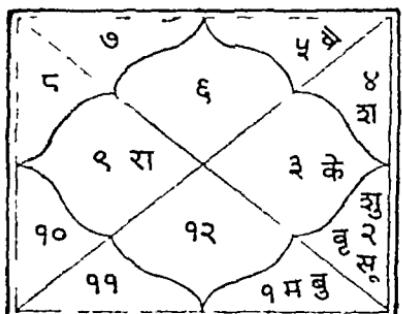
लग्नेश, बुध को अष्टम भाव को, और अष्टमेश को, सभी चारो अङ्गों को, अपनी क्रूर दृष्टि से प्रभावित तथा पीडित कर रहा है। स्पष्ट है कि शनि मृत्यु का कारण बनेगा।

अब हमे यह विचार आ सकता है कि किसी बीमारी से, जिसका प्रतिनिधि षष्ठेश होकर, शनि बन रहा है, मृत्यु हो जाये। परन्तु चूँकि बुध, जोकि लग्नेश है और अष्टम मे स्थित है, केतु-अधिष्ठित राशि का स्वामी है और मगल भी लग्नाधिपति से युक्त होने के कारण आघातात्मक है। इस प्रकार आघातात्मक बुध और मगल दोनो ही आघातात्मक मृत्यु को जतला रहे हैं। इसीलिये शनि भी आघातात्मक सिद्ध होगा। इस बात की पुष्टि, कि मृत्यु आघात से होनी चाहिये, सूर्य भी कर रहा है। देखिये कि सूर्य लग्न से विचार करने पर पता चलेगा कि सूर्य लग्न का स्वामी, सूर्य लग्न तथा सूर्य लग्न से अष्ट-मेश, गुरु, ये सभी एकत्र है और सभी, पर केतु तथा मगल का आघातात्मक प्रभाव पापमध्यत्व द्वारा पड रहा है। यही नही अपितु, मगल, केतु का आघातात्मक प्रभाव चन्द्र लग्न के स्वामी सूर्य तथा उस लग्न से अष्टमेश गुरु पर भी पड रहा है। अत यह निश्चित हो गया कि मृत्यु किसी आघात द्वारा होनी चाहिये। अब शनि, गुरु (चतुर्थेश) की लग्न पर दृष्टि तथा शनि षष्ठेश की लग्न, अष्टम आदि पर दृष्टि, यह बतला रही है कि घातक जनता मे से किसी व्यक्ति का हाथ है।

उदाहरण (३) —अष्टम, अष्टमेश अथवा लग्न, लग्नेश अथवा सभी अपने ऊपर लेने वालो प्रभावो द्वारा मृत्यु के कारण को जतलाते है, और यह कोई आवश्यक नही कि सदा अष्टम, अष्टमेश ही मृत्यु

के कारण को बतलाये । लग्न, लग्नेश भी अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभाव द्वारा मृत्यु के कारण को बतला देते हैं । प्रस्तुत प्रकरण में अष्टम, अष्टमेश को क्षेत्र मान कर चला जाये अथवा लग्न, लग्नेश को—इस बात का निर्णय इस से होगा कि किस पर अधिक "प्रतिनिधित्व" रखने वाले ग्रहों का प्रभाव है यदि किसी एक साझे तथ्य के प्रतिनिधि लग्न, लग्नेश पर प्रभाव डालते है और अष्टम, अष्टमेश पर नही तो लग्न, लग्नेश को क्षेत्र मान कर इन पर पडे हुए प्रभाव से मृत्यु के कारण का निश्चय करना चाहिये । इस तथ्य का उदाहरण श्री एच० एन० सान्याल भूतपूर्व एडवोकेट जेनरल जोकि एक चोर के हाथो गला घोट कर मार डाले गये, की कुण्डली उपस्थित करती है यहाँ अष्टम, अष्टमेश गुरु पर शनि बुध का प्रभाव है परन्तु शनि तथा बुध मे कोई साझी बात दृष्टि गोचर नही होती । उधर लग्न, लग्नेश पर केतु तथा सूर्य का प्रभाव है जिन मे मगल के गुण साझे है क्योंकि केतु मगल रूप है और सूर्य मगल-अधिष्ठित राशि का स्वामी है। अत. प्रभावित होने वाला क्षेत्र लग्न, लग्नेश का लिया जायेगा । चू कि केतु तथा मगल क्षतिद्योतक ग्रह है इस महानुभाव का आघात द्वारा मृत्यु को पाना केतु तथा सूर्य के लग्न, लग्नेश पर पडने वाले प्रभाव से सिद्ध है । अब देखिये लग्न पर चतुर्थेश सूर्य का, और षष्ठेश शुक्र का प्रभाव है इन पर बुध का भी प्रभाव माना जायेगा, इन पर एक तो बुध का प्रभाव है तो दूसरी ओर चन्द्र का । इस प्रकार इनकी मृत्यु किसी व्यक्ति द्वारा आघात पहुचाये जाने से हुई । यह भी नोट करने की बात है कि जो लग्न तथा लग्नेश केतु तथा सूर्य के प्रभाव मे आए हुए हैं वे वृषभ राशि से
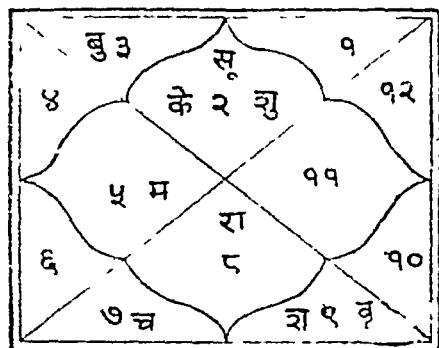
कु० स० ५८

सबद्ध है और लग्न मे इस राशि का इस प्रकार पीडित होना गले से पीडित होना है क्योकि वृषभ, काल पुरुष का दूसरा अ ग अर्थात् "गला" (Neck) है।

उदाहरण (४)—कभी कभी मरण विधि का पता न सीधे अष्टम-भाव से चलता है न लग्न से बल्कि सुर्दशन पद्धति के प्रयोग से। इस कुण्डली वाले व्यक्ति की किसी पागल ने हत्या कर डाली। यहा देखिये लग्न से छठे भाव का स्वामी शुक्र लग्न को देख रहा है। चन्द्र लग्न से छठे भाव का स्वामी चन्द्र स्वय चन्द्र लग्न है। सूर्य लग्न से छठे भाव का स्वामी गुरु, सूर्य लग्न मे है।
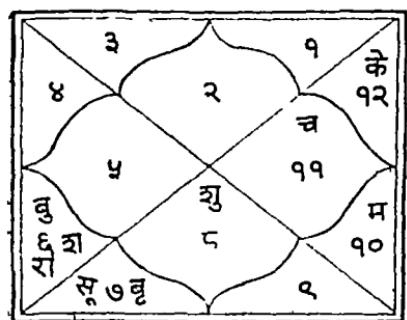
कु० स० ५६

इस तरह प्रत्येक लग्न का उसके छठे भाव के स्वामी से घनिष्ठ सबन्ध है। अत स्पष्ट है कि यह सम्बन्ध लग्नो को अर्थात् शरीर को आघात पहुँचायेगा। चतुर्थेश सूर्य का अष्टमेश गुरु से युति करना, और, षष्ठेश शुक्र का लग्न को देखना और बुध का राहु के द्वारा लग्न पर प्रभाव, ये सब, इस आघात को व्यक्ति द्वारा किया हुआ दिखा रहे है।

: ३३ :

पुत्राभाव योग

परिभाषा—यदि मगल द्वितीय स्थान मे, शनि तृतीय स्थान मे तथा गुरु पचम अथवा नवम स्थान मे, हो और नवमेश पचमेश निर्बल हो तो पुत्र का अभाव कहना चाहिये।

हेतु—मगल की द्वितीय तथा शनि की तृतीय स्थिति महान् पुत्र

नाशक स्थिति है। इस में कारण यह है कि शनि तथा मगल दोनों की पूर्ण दृष्टि पुत्र भाव अर्थात् पंचम भाव पर पड़ेगी । चूँकि "भावात् भावम्" के सिद्धान्तानुसार नवम भाव भी पुत्र विचार में पंचम भाव ही की भाँति उपयुक्त है अत: इन दो पापी ग्रहों अर्थात् शनि तथा मगल की पूर्ण दृष्टि नवम भाव पर भी पडेगी। अब यदि गुरु, जोकि पुत्रकारक है, पचम अथवा नवम भाव मे हुआ तो इन्ही दो पापी ग्रहों शनि तथा मगल की दृष्टि उस पर भी पडेगी । इस प्रकार पंचम भाव, नवम भाव तथा पुत्रकारक तीनो प्रबल पाप प्रभाव में आ जायेगे। अब यदि "पुत्र" के प्रतिनिधि (i) पंचम भाव, (ii) पंचमाधिपति (iii) नवम भाव (iv) नवमेश और (v) गुरु, ये पाँच माने जावे, जैसा मानना कि सर्वथा शास्त्रानुकूल ही है, और पचमेश, नवमेश भी पाप प्रभाव मे आ जाये तो पुत्र देने में कोई भी अग समर्थ नही रहेगा और पुत्रभावयोग पूर्ण बन जायेगा।

उदाहरण (१)—इस व्यक्ति को सन्तान का अभाव है। देखिये किस प्रकार पाँचों के पाचों 'पुत्र" के प्रतिनिधि पाप प्रभाव मे आ चुके है। (i) पचम भाव, (ii) उसके स्वामी बुध पर सूर्य मगल, शनि तीन पापी ग्रहों का प्रभाव, (iii) गुरु पर शनि, राहु, मगल तीन ग्रहों का पाप प्रभाव (iv) नवम भाव पर शनि, राहु, मगल तीन पापी ग्रहो का प्रभाव, (v) नवमाधिपति शुक्र की, अनिष्ट स्थान पष्ठ मे शत्रु राशि मे स्थिति तथा उस पर शनि, राहु का केन्द्रीय प्रभाव।

कु० सं० ६०
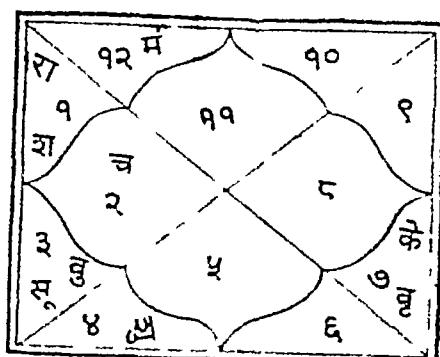
: ३४ :

पुष्कल-योग

परिभाषा—जब चन्द्र लग्न का स्वामी लग्न के स्वामी के साथ किसीकेन्द्र स्थान मे, अपने अधिमित्र की राशि मे, स्थित हो और लग्न को कोई बलवान् ग्रह देखता हो तो 'पुष्कल' नाम का योग होता है।

सूचना—योग बनने के लिये ऐसा लिखा है कि "लग्न को कोई बलवान् ग्रह देखता हो" जिसका आशय सभवतया यही प्रतीत होता है कि लग्न को कोई शुभ ग्रह देखता हो अथवा लग्न का स्वामी देखता हो क्योकि लग्न का बलवान् होना अपेक्षित है। अन्यथा पापी ग्रह की दृष्टि से लग्न निर्वल हो जायेगा।

फल—इस योग मे उत्पन्न व्यक्ति धनवान्, महान् व्यक्तियो से सम्मानित, भूषणो से भूषित, शुभ वाणी बोलने वाला तथा उत्तम राजा होता है।

हेतु—चन्द्राधिष्ठित राशि का स्वामी तथा लग्न का स्वामी जब केन्द्र मे शुभ राशि मे बलवान् हो और लग्न को भी बल मिल रहा हो तो इसका अर्थ यह निकला कि तीन अङ्ग लग्नो के अतीव बलवान् हुए। लग्न मे तथा चन्द्र लग्न मे तथा इनके स्वामियो मे ही तो राज्य, यश, धन, महत्व, भोगसामग्री आदि उत्तम गुण निहित हैं। देखिये आधार नियम सख्या तीन, इसके अनुसार लग्न के बल का घनिष्ठ सबन्ध धन, मान तथा पदवी से बतलाया गया है।

शास्त्रोक्ति—(क) जन्मेशो सहिते विलग्न पतिना केन्द्रेऽधिमित्रर्क्ष गे।
लग्नं पश्यति कश्चिदत्र बलवान् योगो भवेत् पुष्कल ॥
(फलादीपिका अ ६ श्लोक १९)

अर्थात्—जन्म राशि का स्वामी लग्न के स्वामी को साथ लेकर केन्द्र मे अधिमित्र की राशि मे स्थित हो और लग्न को कोई बलवान् ग्रह देखता हो तो "पुष्कल" नाम का योग बनता है।

(ख) श्रीमान् पुष्कलयोगजो, नृपवरै. सन्मानितो विश्रुतः ।
स्वाकल्पाम्बरभूषित. शुभवचाः सर्वोत्तमः स्यात् प्रभुः ।।
(फलदी० ६-२०)

पुष्कल योग मे उत्पन्न मनुष्य श्रीमान् अर्थात् धनाढ्य होता है, बड़े-बडे राजाओ से सन्मान पाता है, बहुत विद्वान् होता है, बहुत भूषणों से भूषित होता है, शुभ वाणी बोलता है, सब में मुख्य, प्रभु अर्थात् राजा होता है'।

उदाहरण—यह कुण्डली शाहजहाँ बादशाह की है। इसमे लग्नाधिपति बुध तथा चन्द्रलग्नाधिपति शनि लग्न केन्द्र में इकट्ठे है और चन्द्र-लग्नाधिपति अपने मित्र बुध के साथ है, लग्न को केन्द्रस्थ वक्री इसी लिये बलवान् मंगल देखता है। इस प्रकार पुष्कल योग बना।

कु० स० ६१
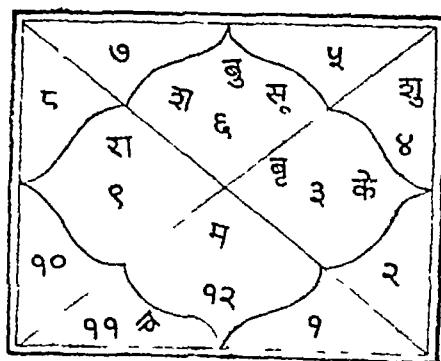
: ३५ :

भद्र योग

परिभाषा—बुध यदि अपनी मूलत्रिकोण, उच्च अथवा स्वक्षेत्र (३ तथा ६) में केन्द्र में स्थित हो तो "भद्र" नाम का, पचमहापुरुष योगों में से एक, योग बनाता है।

फल और हेतु—बुध के कारक रूप में अथवा मिथुन तथा कन्या के स्वामी रूप मे जो गुण है उनका प्रादुर्भाव जातक के लाभार्थ होता जैसे बुध को विष्णु अर्थात् सात्विक तथा परोपकारी एव यज्ञीय माना है। अत. भद्र योग वाला मनुष्य सात्विक प्रकृति, तथा निस्वार्थ भाव से सेवा में रत होगा। बुध कोमल और मृदु है। जातक भी कोमल,

मृदु शरीर वाला लावण्य युक्त होगा । बुध का बुद्धि से घनिष्ठ सम्बन्ध है, जातक भी बुद्धिमान्, प्रखर प्रज्ञा वाला, शास्त्रज्ञ, हेतु पूर्ण होगा । तृतीय तथा षष्ठ राशि मनुष्य की बाहु, वक्षस्थल, तथा पेट है अत जातक के ये सब अङ्ग सुडौल सुन्दर होगे ।

शास्त्रोक्ति—शार्दुलप्रतिमाननो द्विपगति पीनोरूवक्षस्थलो,
रम्यपीनसुवृत्तबाहुयुगल, तत्तुल्यदेहोच्छ्रय: ।
कामी कोमलसूक्ष्मरोमनिचयै संरुद्धगंडस्थल,
प्राज्ञ पंकजगर्भपाणिचरण, सत्वाधिको योगवित् ।।
(मानसागरी ४-२१५)

अर्थात् हाथी की सी चाल वाला, सुन्दर वक्षस्थल वाला, सुन्दर सुडौल भुजाओ वाला और इसी प्रकार अन्य अगो से सुन्दर कामी, कोमल, छोटे-छोटे बालों वाला, महान् बुद्धि वाला, पाँव मे तथा हाथ मे कमल के चिन्हो वाला, अधिक सात्विक स्वभाव वाला तथा योग को जानने वाला भद्र योग वाला होता है ।

कु० सं० ६२
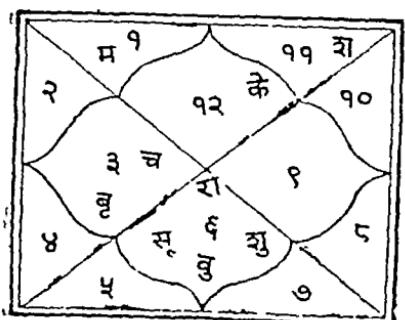
उदाहरण (१)—यह कुण्डली विख्यात अंग्रेज महिला स्वर्गीया ऐनिबिसट की है जिसने भारतवर्ष के लिए तथा हिन्दुसंस्कृति के लिए महान् प्रयास किया तथा जो सैकडो धार्मिक तथा अन्य पुस्तकों की लेखिका थी। यहाँ बुध केन्द्र मे अथवा उच्च मे स्थित है और वह केन्द्र लग्न से, सूर्य लग्न से तथा चन्द्र लग्न से, सभी से, केन्द्र मे है । अत बुध का प्रभाव लग्नो पर अत्यधिक है जिससे भद्र योग का पूर्ण फल कहना चाहिये ।

कु० सं० ६३

उदाहरण (२)—ईश्वर चन्द्र विद्या सागर की कुण्डली (धनु लग्न) भी इस योग का एक उत्तम उदाहरण है। बुध प्रमुख केन्द्र में स्वक्षेत्र में स्थित है तथा लग्न तथा सूर्य दोनों को प्रभावित कर रहा है। यही बुध विद्याद्योतक द्वितीयाधिपति शनि पर भी दृष्टि डालकर विद्या की उत्तम प्राप्ति की ओर इशारा कर रहा है। इस प्रकार इस कुंडली में लग्नों तथा द्वितीयेश पर बुध के प्रभाव के कारण विद्वत्ता, परोपकारिता, नम्रता यज्ञीय जीवन आदि बुध के वैष्णवी गुणों का प्रादुर्भाव हो रहा है।
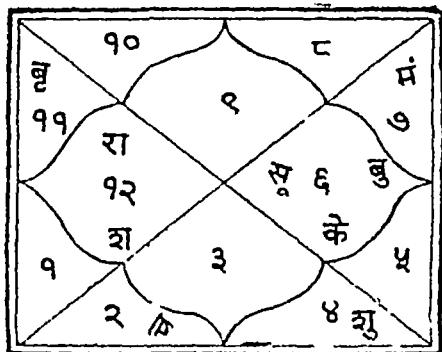
: ३६ :

भाषणशक्ति-ह्रास-योग

परिभाषा—यदि बुध द्वितीय स्थान मे अत्यधिक पाप प्रभाव में हो तो भाषणशक्ति-ह्रास योग होता है।

फल—इस योग मे उत्पन्न होने वाले की बोलने की शक्ति जाती रहती है।

हेतु—द्वितीय स्थान 'वक्तृत्व" शक्ति, भाषण शक्ति का स्थान है। और बुध "भाषण" का "कारक" ग्रह है। अत. स्पष्ट है कि जब दोनों इकट्ठे हों और दोनो पर पाप प्रभाव अधिक हो तो बोलने की शक्ति जाती रहेगी।

शास्त्रोक्ति—(१) वाक्स्थानपे देवपुरोहितेन युक्ते,
यदा नाशगतेऽत्र मूक· ॥(सर्वार्थ० ३—३०)

अर्थात् द्वितीयेश और गुरु अष्टम मे हो तो मनुष्य मूक (गूंगा) होता है।

(२) सभा सगतो स भाषते व्यास एव ।।

(चमत्कार चिन्तामणिपृष्ठ २०—श्लोक २)

बुध (द्वितीय स्थान मे) बली होकर स्थित हो तो व्यास भगवान् की भाति उत्तम वक्ता होता है ।

कु० स० ६४
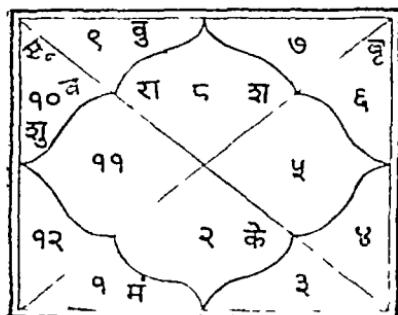
उदाहरण—यह कुण्डली एक बालक की है जो जन्म से ही नही बोल सका । यहाँ बुध द्वितीय स्थान अर्थात् वाणी के स्थान मे स्थित है । दोनो प्रबल पाप मध्यत्व मे स्थित है क्योकि दोनों के एक ओर तो शनि राहु मगल का पाप प्रभाव है और दूसरी ओर सूर्य चन्द्र (सूर्य के समीप होने से पापी) तथा केतु का प्रभाव है । इस प्रकार तीन पापी प्रभावो से पाप मध्यत्व बना है अत बुध तथा द्वितीय भाव अत्यन्त निर्बल है । फल स्वरूप वाणि-शक्ति का अभाव हो गया है । पचम भाव भी वाक्-स्थान कहलाता है उस पर भी ह्रासात्मक राहु तथा शनि का प्रभाव राहु की पचम दृष्टि द्वारा पड रहा है है । पचमाधिपति तथा वागीश गुरु पर भी वही शनि का प्रभाव केतु की दृष्टि द्वारा पड रहा है । इस प्रकार द्वितीय भाव उस का स्वामी, पचम भाव उसका स्वामी बुध तथा गुरु सभी भाषण शक्ति के द्योतक अंग (Factors) ह्रासात्मक प्रभाव मे पाये गये जिससे जन्मजात भाषण शक्ति का अभाव सिद्ध हुआ ।

: ३७ :

भास्कर-योग

परिभाषा—सूर्य से बुध दूसरे स्थान मे हो बुध से चन्द्र एकादश स्थान मे हो, चन्द्र से गुरु त्रिकोण (नवम अधिक अच्छा है) मे हो तो 'भास्कर योग' बनता है।

फल—भास्कर-योग में उत्पन्न होने वाला मनुष्य शूरवीर, राजा के तुल्य, शास्त्रो को जानने वाला, रूपवान्, गाने का प्रेमी, ज्ञानी धनी, गणितज्ञ, धीर तथा समर्थ होता है।

जातक पारिजात मे के निम्न श्लोक से इस की पुष्टि होती है.—

शास्त्रोक्ति—"**भानोरर्थगते बुधे शशिसुताल्लाभस्थितश्चन्द्रमा-**
श्चन्द्रात् कोणगत. पुरन्दरगुरुर्योगस्तदा भास्करः।
शूरो भास्करयोगजः प्रभुसमः शास्त्रार्थविद्रूपवान्,
गान्धर्वश्रुति वित्तवान् गणितविद् धीर. समर्थो भवेत्॥
(जा० पा० ७—६७)

हेतु—ग्रहो की उपर्युक्त स्थिति से सूर्य, बुध तथा चन्द्र के मध्य में आजाने से शुभ मध्यत्व तथा उभयचरी योग का उत्तम फल करेगा। चन्द्रपर भी गुरु की दृष्टि के कारण चन्द्र भी बलवान् समझा जायेगा। अत दो लग्नों के बली हो जाने से उत्तम सुख आदि की प्राप्ति होगी और फिर "**शुभं वर्गोत्तमे जन्म वेशिस्थाने च सद्ग्रहे**" के अनुसार सूर्य से द्वितीय स्थान (वेशि स्थान) मे बुध एक शुभ ग्रह के आने तथा शुभ दृष्ट होने से बुध तथा द्वितीय भाव सबन्धी उत्तम फल होगा ही। शास्त्रजानना, रूपवान् होना, ज्ञानी धनी, गणितज्ञ होना इसका फल है। चन्द्र से तृतीय स्थान मे भी शुभ प्रभाव होगा जिसका फल शूरता, धीरता, सामर्थ्य आदि होगे।

उदाहरण—यह कुण्डली गोस्वामी गोकुलनाथ जी की है। आप गुण मे ओजस्वी, धर्मरक्षक जनसग्रही, विविधागमज्ञ, रसिक कलाप्रिय थे। यहा सूर्य से बुध द्वितीय मे, बुध से चन्द्र एकादश में और चन्द्र से गुरु त्रिकोण मे स्थित होकर "भास्कर" योग की सृष्टि कर रहा है।

कु० स० ६५
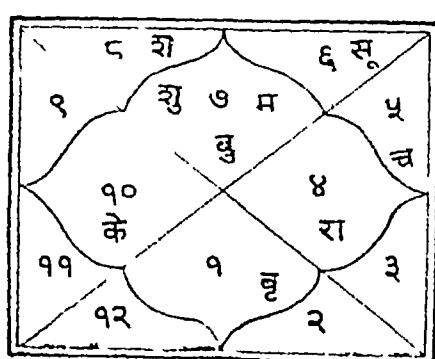
: ३८ :

भेरी-योग

परिभाषा—(i) यदि लग्न मे तथा लग्न से द्वितीय, सप्तम तथा द्वादश मे ग्रह स्थित हो और दशामाधिपति बलवान् हो तो 'भेरी' योग होता है।

(ii) यदि गुरु से केन्द्र मे शुक्र तथा लग्नाधिपति स्थित हो तो भी भेरी योग होता है।

फल—इस योग मे उत्पन्न होने वाला मनुष्य दीर्घायु, रोगरहित, भयहीन, राजा, धनी, भूमि का स्वामी, पुत्र तथा स्त्री से युक्त, प्रसिद्ध, सुशील, सुखी, शूर, निपुण तथा कुलीन होता है।

हेतु—फल के सामने कहे सब गुण लग्न से सबन्ध रखते हैं। चूकि "भेरी" योग मे लग्न को बहुत बल मिलता है। चाहे वह ग्रहो की लग्न मे स्थिति सप्तम मे स्थित होकर लग्न पर दृष्टि, द्वितीय द्वादश भाव मे होकर लग्न पर शुभ मध्यत्व की सृष्टि अथवा गुरु शुक्र से केन्द्र मे स्थिति आदि किसी कारण से हो। बली लग्न इन सब गुणो को देता है।

उपर्युक्त परिभाषा तथा फल की पुष्टि मे निम्न शास्त्रोक्तियाँ देखिये —

शास्त्रोक्ति २—स्वान्त्योदयास्तभवनेषु वियच्चरेषु।
कर्माधिपे बलयुते यदि भेरीयोग
केन्द्रं गतौ सुरगुरो सितलग्न नाथौ।
भाग्येश्वरे बलयुते तु तथैव वाच्यम्॥

(जा० पारि० ७—१४०)

(२) दीर्घायुष विगतरोगभया नरेन्द्रा,
बह्वर्थभुम्सिुतदारयुता. प्रसिद्धा।

आचार्यभूरि सुखशौर्य्यमहानुभावा:,
भेरीप्रजातमनुजा निपुणाः कुलीना। ।।

(जा० पा० ७—१४१)

उदाहरण—यह कुण्डली एक धनाढ्य जनरल की है। यहाँ भेरी योग इस प्रकार बना है कि लग्न से क्रमश. द्वितीय, द्वादश तथा सप्तम मे शुभ ग्रह बुध, शुक्र तथा चन्द्र है और दशमाधिपति सूर्य मित्रराशि का लग्न में गुरुयुक्त तथा चन्द्रदृष्ट बलवान् है।

कु० सं० ६६

: ३९ :
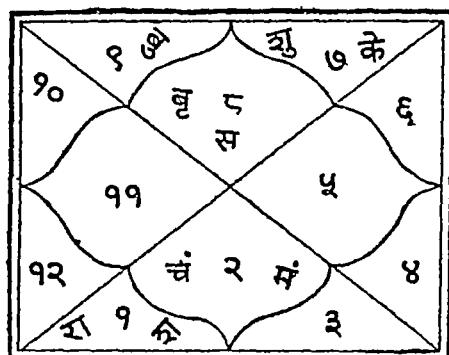
मृत सन्तान-उत्पत्ति योग

परिभाषा—यदि शनि और राहु का सबन्ध पंचम भाव, उसके स्वामी तथा गुरु से हो तो सन्तान योग होने पर मृत सन्तान की उत्पत्ति होती है।

हेतु—शनि पत्थर, है चमड़ा है। अर्थात् यह बेजान है, मृत है। और राहु तो शनि ही का रूप है अत: वह भी मुर्दा ही हुआ। जब इन मृतावस्था-द्योतक ग्रहों का प्रभाव सन्तान-द्योतक अङ्गों अर्थात् पचम भाव पचमेश तथा गुरु पर पडेगा तो सन्तान को मृतावस्था की प्राप्ति होगी अर्थात् मृत सन्तान की उत्पत्ति होगी परन्तु इस के लिए आवश्यक है कि गर्भधारण करने का योग पचम आदि पर शुभ दृष्टि आदि द्वारा बनताहो। यद्यपि स्पष्ट है कि राहु तथा शनि के पृथक्ताजनक प्रभाव के कारण वह गर्भ पूर्ण न हो पायेगा।

कु० स० ६७
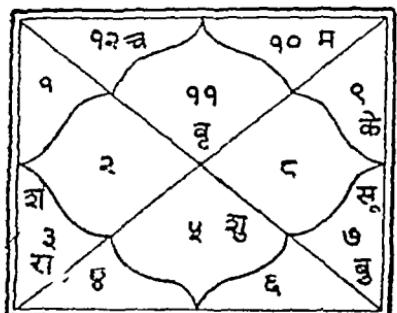
उदाहरण—यह कुण्डली "ध्रुव-नाडी" से ली गयी है। नाडी मे लिखा है कि इस व्यक्ति की पत्नी, मृतसन्तान ही उत्पन्न करेगी। अब देखिये, शनि और राहु, दोनो "मृत" ग्रह पचम मे बैठे हैं। राहु चू कि पचम दृष्टि से बुध को देख रहा है इसलिये राहु द्वारा राहु तथा शनि का प्रभाव। पचमेश पर भी है। रह गया पुत्र कारक गुरु, उस पर भी राहु की नवम दृष्टि है अत. उस पर भी राहु तथा शनि का प्रभाव है (देखिये नियम सख्या १६)। पचम तथा पचमेश पर गुरु की दृष्टि सन्तान देती है परन्तु राहु शनि का उपर्युक्त प्रभाव उसे मृत सन्तान का रूप देता है।

शास्त्रोक्ति —पुत्र स्थानाधिपे मन्दे युग्मांशे बुध वीक्षिते
सन्ततिस्तम्भायोगाप्ति प्रतिबन्धकजातक

अर्थात् पचमेश शनि जब बुध के नवाश मे स्थित हो और बुध से दृष्ट भी हो तो सन्तति के रुकजाने का योग बनता है। भाव यह है कि जब शनि निर्जीव है और बुध भी नपुसक, तो सन्तति कैसे हो!

: ४० :

महायोग

परिभाषा—जब ग्रह एक दूसरे के घर मे स्थित होते हैं तो इस प्रकार परस्पर छियासठ (६६) योग बनते है। लग्नाधिपति आदियो के साथ छठे, आठवे अथवा बारहवे भाव के स्वामियो के व्यत्यय (Exchange) से ३० तीस योग बनते है, इनको 'दैत्य' योग के नाम से पुकारा गया है। इस प्रकार तृतीयाधिपति के अन्य भावाधि-

पतियों से व्यत्यय(Exchange)के फलस्वरूप जो आठ योग बनते है उनको खल योग कहा जाता है और शेष २, ४, ५, ७ ६, १० तथा ११ भाव के स्वामियो का परस्पर व्यत्यय जिन अट्ठाइस योगों की सृष्टि करता है उनको आगे दिखलाया है और इनको **महायोग** कहते हैं ।

लग्नेश का २, ४, ५, ७, ६, १० तथा ११ भाव के स्वामियो के साथ व्यत्यय = ७

द्वितीयेश का ४, ५, ७, ६, १० तथा ११	,,	=६
चतुर्थेश का ५, ७, ६, १० तथा ११	,,	=५
पचमेश का ७, ६, १० तथा ११	,,	=४
सप्तमेश का ६, १० तथा ११	,,	=३
नवमेश का १०, तथा ११	,,	=२
दशमेश का एकादशेश से व्यत्यय	,,	= १
	कुल	२८

फल—महा योग वाले मनुष्य पर लक्ष्मी (धन) की सदा कृपा रहती है, वह प्रभु धनाढ्य, हर प्रकार की मुख सामग्री से युक्त, राजा का प्यारा, वाहनो वाला, पुत्रों से युक्त होता है।

हेतु—चूं कि विविध शुभ भावों का दूसरे विविध शुभ भावों के स्वामियों से व्यत्यय है । अत: स्पष्ट है कि शुभता कई प्रकार की होगी। जैसे– द्वितीय तथा चतुर्थ के स्वामियो के व्यत्यय से धन से सुखी होना; द्वितीयेश, पचमेश के व्यत्यय से विद्वान्, कलावान्, वक्ता आदि होना; द्वितीयेश सप्तमेश के व्यत्यय से व्यापार से धन खूब कमाना, स्त्री पक्ष से धन की आय आदि द्वितीययेश नवमेश के व्यत्यय से धन का अचानक मिलना, द्वितीयेश तथा दशमेश में व्यत्यय से राज्य से धन की प्राप्ति, शुभ कर्मो से धनी होना, द्वितीयेश एकादशेश मे व्यत्यय से महाधनी बनना, सूद आदि से धन की वृद्धि; चतुर्थेश, पंचमेश के व्यत्यय से राज्ययोग, मन्त्री पद, विद्यासुख की प्राप्ति; चतुर्थेश सप्तमेश में व्यत्यय

से भूमि जायदाद, स्त्री से सुख की प्राप्ति, चतुर्थेश नवमेश के व्यत्यय से बहुत सपत्ति, जायदाद की प्राप्ति चतुर्थेश दशमेश के व्यत्यय से राज्यसुख की प्राप्ति, चतुर्थेश एकादशेश के व्यत्यय से भूमि बन्धु वाहन का लाभ, पचमेश, सप्तमेश के व्यत्यय से राज्य, धन की प्राप्ति, पचमेश नवमेश के व्यत्यय से धार्मिक जीवन, उत्तम धन, उच्चविचार की प्राप्ति,पचमेश दशमेश के व्यत्यय से राज्य की प्राप्ति, पचमेश एकादशेश के व्यत्यय से महालाभ, महानविद्या की प्राप्ति सप्तमेशनवमेश के व्यत्यय से भाग्यवती स्त्री की प्राप्ति, स्त्री से भाग्य का चमकना; सप्तमेश दशमेश के व्यत्यय से राज्य की प्राप्ति, सप्तमेश एकादशेश के व्यत्यय से स्त्री पक्षसे बहुत आय, स्त्री की दीर्घायु, नवमेश दशमेश के व्यत्यय से राज्यप्राप्ति, नवमेश एकादशेश के व्यत्यय से महाभाग्य की प्राप्ति, राज्य कृपा प्राप्ति, "दशमेश" एकादशेश के व्यत्यय से राज्य की प्राप्ति, शुभकर्मों की प्राप्ति मान की प्राप्ति।

उपर्युक्त परिभाषा तथा फल की पुष्टि मे निम्नलिखित शास्त्रोक्तियाँ देखिये .—

शास्त्रोक्ति (१) "अन्योन्यं भवनस्थयो लग्नादिरि फान्तक,
भावाधीश्वरयो क्रमेण कथिता षट्षष्टियोगा जनै।
द्विशद्दैत्यमुदीरितं व्ययर्ग्पुछिद्रादिनाथोत्थिता,
त्वष्टौ शौर्य्यपते खला निगदिता शेषा.
महाख्या स्मृता ॥
(फलदीपिका; ३-३२)

(ii) श्री कटाक्षनिलय· प्रभुराढ्य,
चित्रवस्त्र कनकाभरणश्च ।
पार्थिवाप्त बहुमान समाज्ञो,
यानवित्तसुतवाँश्च महाख्ये ॥ (फलदीपिका ६-३४)

उदाहरण (१)—प्रत्येक व्यत्यय के उदाहरण तो स्थानाभाव के कारण नही दिये जा सकते परन्तु, कुछ एक उदाहरण "महा" योगो

कुं० सं० ६८

के दिये जाते है। जहाँगीर बादशाह की कुण्डली (तुला लग्न) मे सप्तमाधिपति मंगल का दशमाधिपति चन्द्र से व्यत्यय है। इस व्यत्यय के कारण जहाँगीर बादशाह के कार्यो (दशम भाव) मे विलासिता (सप्तम भाव) आगयी।

कुं० स० ६९

उदाहरण (२)—यह कन्या लग्न की कुण्डली शाहजहाँ मुगल सम्राट् की है। इसमे पचमेश तथा दशमेश का व्यत्यय है, पचमेश न केवल पंचमेश ही है बल्कि पंचमस्थ सूर्य तथा तथा चन्द्र राशि का स्वामी भी है। अर्थात् पुत्र और उसकी क्रूरता का पूर्णप्रतिनिधि (तीनों लग्नो का स्वामी होने से) है ऐसा शनि दशम स्थान में राहु को साथ लेकर बैठा है और वहाँ से दशम तथा लग्न दोनो को अपने पाप प्रभाव में लिये हुये है अर्थात् सम्राट् के मान का भग कर रहा है। इस प्रकार दशमाधिपति वुध का पंचम में जाकर सूर्य तथा चन्द्र के पाप प्रभाव मे आ जाना मान (दशम) की हानि पुत्र द्वारा हो इस तथ्य की ओर इशारा कर रहा है। यह वही सम्राट् है जिसके पुत्र औरगज़ेव ने उसे बुढ़ापे मे कैद कर दिया था।

: ४१ :

महान् आध्यात्मिक योग

परिभाषा—जब मनोद्योतक अंगों-चतुर्थ भाव, चतुर्थेश तथा चन्द्र पर शनि का प्रभाव हो और लग्नों तथा लग्नों से नवम भाव के स्वा-

मियो का परस्पर सम्बन्ध हो तो मनुष्य महान् आध्यात्मिक जीवन का मालिक, महात्मा, होता है।
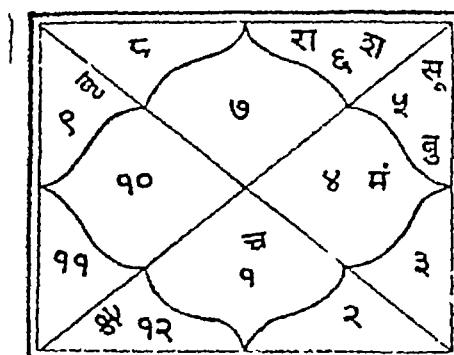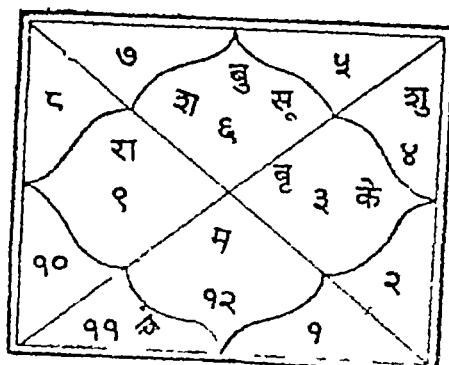
हेतु—शनि एक तपस्वी, योगी, वैराग्यपूर्ण ग्रह है। जब इस ग्रह का प्रभाव युति अथवा दृष्टि द्वारा मन पर पडता है तो स्पष्ट है कि मन मे वैराग्य की, प्रपच से हटने की, एकान्त प्रियता आदि की, वृत्ति उत्पन्न होगी और इसके साथ-साथ यदि मनुष्य के निज (Self) का अर्थात् उसके लग्नो का, नवमाधिपति, अर्थात् धर्म, तथा आध्यात्मिकता-द्योतक ग्रहो से भी सपर्क हुआ तब तो धर्म मे तथा आध्यात्म मे रुचि निष्ठा का रूप धारण कर लेगी।

कु० स० ७०
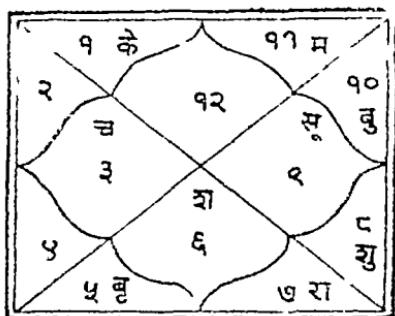
उदाहरण—आध्यात्मिक जीवन का एक अत्युत्तम दुर्लभ उदाहरण पाठको की सेवा मे रखते है। यह कुण्डली एक ऐसे सज्जन की है जिनके जीवन ने १९६३ के लगभग ऐसा पल्टा खाया कि उनको अचानक सहज मे ही विना गु० उपदेश के स्वय ब्रह्माकार वृत्ति अर्थात् सहजसमाधि की उपलब्धि हो गयी। तब से वह सदा ज्ञान की भूमिका मे मस्ती मे आनन्द विभोर अवस्था मे चोबीस घटे रहते है। तुर्या मे स्थिति के कारण घटो उनकी आख पलक नही मारती। प्रभु के रूप मे रहने के अतिरिक्त उनका कोई कृत्य नही रहा क्योकि वे कृतकृत्य हो चुके हैं। देखिये धर्म स्थान के अधिपति मगल तथा लग्न के अधिपति गुरु की परस्पर दृष्टि है जिस से निज का धर्म से पूर्ण समुचित सबध स्थापित हो चुका है। सूर्य लग्न ९ भी उसका नवमेश सूर्य लग्न में है और लग्नेश नवम मे, अत: सूर्य लग्न से भी निज का अध्यात्म से पूर्ण सबन्ध पाया जाता है। अब आइये, चन्द्र लग्न की ओर ; चन्द्र लग्न से नवम भावका स्वामी शनि

अपनी पूर्ण दृष्टि से चन्द्र लग्न को देख रहा है और चन्द्र स्वयम् शनिसे दशम स्थित होकर शनि से सबन्ध स्थापित किये हुए है इस प्रकार तीनों लग्नों से तथा उन लग्नों से तथा उन लग्नो से तीनो धर्मस्थानो का परस्पर पूर्ण सबन्ध है। अब देखिये, मन को चतुर्थ भाव मन का है चन्द्रमा मन का कारक है, दोनों एकत्र है और दोनों पर शनि देव की वैराग्यपूर्ण दृष्टि है। अतः यह दृष्टि पूर्ण वैराग्य को उत्पन्न कर रही है।

शास्त्रोक्ति—दान धर्मसुतीर्थसेवनतपोगुर्वादि भक्तयोषधा।
ऽऽचाराश्चित्तविशुद्धिदेवभाजने विद्याश्रमो वैभव ॥

(उत्त० का० ५-१६)

अर्थात्—कुण्डली का नवम भाव दान, धर्म, सुतीर्थ से वन, गुरु आदि की भक्ति, चित्तशुद्धि, प्रभु भक्ति आदि आध्यात्मिक विषयों से सबन्ध रखता है।

सूचना—स्पष्ट है कि आध्यात्मिकता का निज अथवा लग्न से सबन्ध करना आध्यात्मिकता उत्पन्न करेगा।

: ४२ :

महाभाग्य योग

परिभाषा—यदि किसी पुरुष का दिन मे जन्म हो और लग्न, सूर्य लग्न तथा चन्द्र लग्न, तीनो, अयुग्म (Odd) राशियो मे स्थित हो अथवा किसी स्त्री का जन्म रात्रि के समय हुआ हो और लग्न सूर्य लग्न तथा चन्द्र लग्न, तीनो, युग्म (Even) राशियो मे स्थित हो तो "महाभाग्य" योग होता है।

फल—महान् भाग्य की प्राप्ति तथा धन।

हेतु—स्त्री के लिये रात्रि का जन्म तथा युग्म राशियाँ अनुकूल होती है और पुरुष के लिए दिन का जन्म और विषम(Odd)राशियाँ अनुकूल हैं। लग्नो को अनुकूलता से बल मिलता है और उस बल से धन, मान, पदवी सब कुछ मिल सकता है।

शास्त्रोक्ति--ओजेष्वर्केन्दुलग्नान्यजनि,दिवि पुमांश्चेन्महाभाग्य योग ।
स्त्रीणां तद् व्यत्यये स्यात् शशिनि सुरगुरो केन्द्रगे केसरीति ॥
(फलदीपिका ६-१४)

विषम (Odd) राशियो मे पुरुष के लग्न, चन्द्र लग्न और सूर्य स्थित हो और पुरुष का जन्म हो अथवा सम (Even) राशियो मे स्त्री के लग्न, चन्द्र लग्न तथा सूर्य लग्न हो तो महाभाग्य योग बनता है।

कु० स० ७१
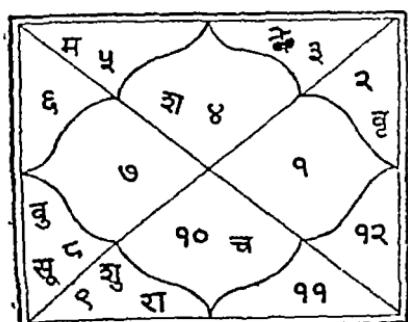
उदाहरण—इस योग का उदाहरण श्रीमती इन्दिरा गाधी की कुण्डली उपस्थित करती है। इस कुण्डली मे लग्न कर्क युग्म है। लग्नाधिपति युग्म राशि मे है—चन्द्र युग्म राशि मे है—चन्द्रलग्न का स्वामी युग्म राशि मे है। सूर्य युग्मराशि मे है। और जन्म भी रात

का है। इस प्रकार तीनों लग्न युग्म-राशियो में है। जिस से महत्ता का योग बन रहा है। महाभाग्य इससे अधिक क्या होगा कि सर्व-सम्मति से भारत वर्ष जैसे महान् देश की प्रधान मन्त्री बना दी गयी।

: ४३ :

माता का स्वल्पआयु योग

परिभाषा—जब चतुर्थ भाव, चतुर्थेश से तथा चन्द्र पर बहुत पाप प्रभाव हो तो माता की आयु बहुत थोड़ी होती है अर्थात् व्यक्ति के बाल्यकाल मे ही उसकी माता की मृत्यु हो जाती है।

हेतु—**"भावात् भावपतेश्च कारकवशात् तत्तत् फलं योजयेत्"** उत्तरकालामृत के इस कथनानुसार, जिसके साथ अन्य सब शास्त्रकार भी सहमत है, चतुर्थ भाव, तथा इसका स्वामी और इस भाव का कारक चन्द्र, सब, माता का प्रतिनिधित्व करते हैं। अत: स्पष्ट है, कि इन सब का प्रबल पाप प्रभाव मे आ जाना माता के जीवन को शीघ्र ही समाप्त करने वाला सिद्ध होगा।

उदाहरण—इस कुण्डली मे मगल और शनि दो पापी ग्रहों की पूर्ण दृष्टि चतुर्थ भाव अर्थात् माता के लग्न पर पड रही है। पुन इन्ही दो पापीग्रहो की दृष्टि माता के "**कारक**" चन्द्र पर भी पड़ रही है। चन्द्र य द्यपि पक्ष बल मे बलवान् था परन्तु तीन अशुभ प्रभावो में आकर बल को

कु० सं० ७२
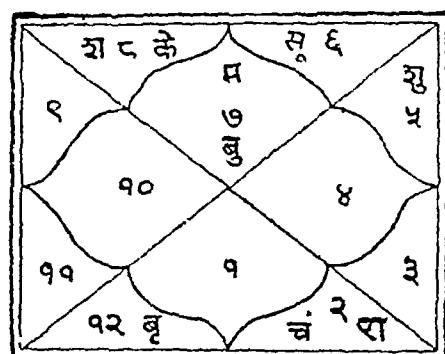
खो चुका है। इस प्रकार माता का भाव तथा माता का कारक दोनों पीड़ित तथा निर्बल पाये गये। रह गया चतुर्थेश शनि, सो शत्रु राशि में केतु से युक्त है जिसका असर चन्द्र पर भी है। अतः भाव भावाधि-

पति तथा कारक, सभी, माता के विरुद्ध सिद्ध हुए। इसकी माता की मृत्यु बालक की तीन दिन की आयु मे ही हो गयी थी।

: ४४ :

मालव्य योग

परिभाषा—जब शुक्र अपनी उच्च राशि अथवा अपने क्षेत्र में स्थित होकर केन्द्र मे बैठता है तो 'मालव्य" योग की सृष्टि होती है। यह योग पचमहापुरुष योगो मे से एक योग है।

फल—"माल्यव्य" योग मे उत्पन्न होने वाला मनुष्य सुन्दर शरीर तथा सुन्दर नयनो वाला, तेजस्वी, पुत्र-स्त्री-वाहन से युक्त, धनाढ्य, शास्त्र को जानने वाला, उत्साही, प्रभु, शक्तिशाली, मन्त्रणा मे चतुर, दीर्घायु, राजपुरुष होता है।

हेतु—जब शुक्र केन्द्र मे भी हो और उच्च अथवा स्वक्षेत्रबल से बलान्वित भी हो तो स्पष्ट है शुक्र बहुत बलशाली हो जायेगा। ऐसे बलशाली शुक्र का केन्द्र मे स्थित होना लग्न को प्रभावित करेगा जिसके फलस्वरूप लग्न मे अर्थात् मनुष्य के व्यक्तित्व मे शुक्र के गुणो का प्राप्त होना युक्ति सम्मत ही होगा।

केन्द्र मे स्थित ग्रह लग्न को प्रभावित करते है इसके लिये देखिये आधार नियम संख्या एक। शुक्र एक "सुन्दर" ग्रह है। अत शुक्र का बली होना मुख तथा आँखो को सुन्दर बनाता है। शुक्र वाहन का "कारक" ग्रह है, इसी लिये बलवान् शुक्र वाहन की प्राप्ति करवाता है। शुक्र "वीर्य" का कारक है, शुक्र का बलान्वित होना वीर्य से बलान्वित होना तथा शौर्य से बलान्वित होना है। शुक्र भी गुरु की भाँति मन्त्री है, चाहे दैत्यो का ही है, अत जब शुक्र बलशाली होगा तो मनुष्य मन्त्रणा शक्ति मे भी चतुर होगा। इस प्रकार बलवान् शुक्र की केन्द्र स्थितिवश लग्न पर प्रभाव पडने के फलस्वरूप मनुष्य मे शुक्र के गुण आजाते हैं।

शास्त्रोक्ति—स्त्रीचेष्टो ललितांगसन्धिनयनः सौन्दर्यशाली गुणी,
तेजस्वी सुतदारवाहनधनी शास्त्रार्थवित्पण्डितः।
उत्साहप्रभुमन्त्रशक्तिचतुर त्यागी परस्त्रीरत,
सप्ततिअब्दमुपैति सप्तसहितं मालव्ययोगोद्भव ॥
(जा०पारि०, ७६—४)

उदाहरण—इस कुण्डली मे स्वक्षेत्री शुक्र केन्द्र मे स्थित होकर ,'मालव्य'' योग बना रहा है। इस योग के कारण इस व्यक्ति को स्त्री पुत्र, धन, सुन्दर शरीर, सुन्दर नयन, प्रतापी प्रभाव, उन्साह-शक्ति, कार्य-कुशलता, मन्त्रणा शक्ति आदि सभी उलिखित गुणो तथा प्रचुर धन की प्राप्ति हो रही है। शनि **शश-योग** बना रहा है जिसके कारण सम्पत्ति से सहस्त्रो की आय तथा शहर में मान आदि सब शश-योग के गुणो की भी प्राप्ति हो रही है।

कु० स० ७३
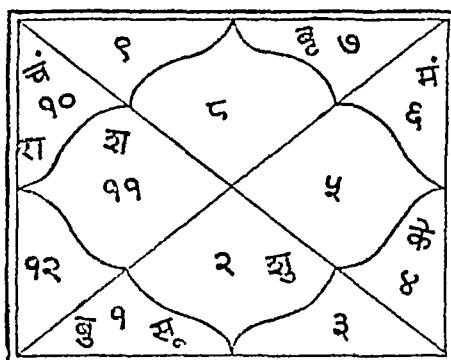
: ४५ :

मृदंग-योग

परिभाषा—कोई भी ग्रह कही उच्च होकर स्थित हो और वह जिस नवांश में हो उसका स्वामी ग्रह यदि अपनी राशि अपनी उच्च राशि मे होकर केन्द्र मे हो और लग्नाधिपति भी बलवान् हो तो "मृदग" योग होता है।

फल—इस योग में उत्पन्न होने वाला मनुष्य अभ्युदय रूप, राजा के समान यशस्वी होता है।

हेतु—लग्नाधिपति का बलवान् होना धन, यश, राज्य, सभी कुछ देता है, यह बात हम नियमों मे तथा अन्यत्र कई स्थानो पर लिख

चुके है और साथ ही एक उच्चग्रह का नवांशपति भी जब केन्द्रादि स्थिति के कारण बलवान् होगा तो कुण्डली का स्तर उच्चता की ओर और भी अधिक जायेगा ।

शास्त्रोक्ति—उच्चग्रहांशकपतौ यदि कोणकेन्द्रे,
तुंगस्वकीयभवनोपगते बलाढ्ये ।
लग्नाधिपे बलयुते तु मृदंगयोग,-
कल्याणरूपनृपतुल्ययश प्रद स्यात्" ॥
(जातक परिजात ७-१४२)

. ४६ :

यमल(Twins)जन्म-योग

परिभाषा—जब लग्नाधिपति का, तृतीयाधिपति का, मङ्गल का तथा बुध का परस्पर सबन्ध स्थापित होता है तो मनुष्य का जन्म यमल (Twin) रूप से होता है ।

हेतु—तृतीयाधिपति भाई का द्योतक है और मङ्गल भाई का कारक ग्रह है । इन दोनो का लग्न लग्नेश से सबन्ध करने का अर्थ यह होगा कि जन्म के समय (जिसका विचार लग्न से किया जाता है) जातक का शरीर अपने भाई के शरीर के साथ था । बुध की इस योग मे युति बाहुल्य (Plurality) को दर्शाती है और इस प्रकार यमल योग को पक्का करती है ।

उदाहरण—इस व्यक्ति का जन्म दोपहर १२-५० पर आठ जनवरी सन् १६५२ को मेरठ मे यमल रूप से अर्थात् भाई के साथ हुआ । इस कुण्डली पर सुदर्शन पद्धति से विचार कीजिये अर्थात् तीनो लग्नो से तृतीय भाव आदि का परीक्षण कीजिये । चन्द्र लग्न से जब आप विचार करेंगे तो सहज ही मे देखेंगे कि चन्द्र लग्न वृषभ है और उसमे चन्द्र स्वय तृतीयाधिपति होकर बैठा हुआ है

कु० सं० ७४

और बुध का उस तृतीयाधिपति चन्द्र से तथा चन्द्र लग्नाधिपति शुक्र दोनों से सबन्ध है। बुध चूँकि मगल-अधिष्ठित राशि का स्वामी है, इसलिये मंगल का योग भी चन्द्र लग्न तथा उससे तीसरे भाव के स्वामी से होगया है। सूर्य लग्न से तृतीय भाव का स्वामी शनि सूर्य लग्न से दशम हैं और सूर्य लग्न के स्वामी को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है। अत: तीसरे भाव के स्वामी का सूर्य लग्न से संबन्ध स्थापित हो चुका है। तृतीयाधिपति शनि मगल से युति कर रहा है और सूर्य लग्न को देख रहा है और फिर शनि और मगल बुध की राशि मे स्थित हैं। इस प्रकार सूर्य लग्न से भी तृतीयाधिपति मगल तथा बुध का परस्पर सबन्ध सिद्ध है। रह गया लग्न। मगल तथा बुध का व्यत्यय (Exchange) होने के कारण मगल (लग्नेश) तथा बुध (तृतीयेश) मे भी संबन्ध स्थापित हो चुका है।

इस प्रकार तीनों लग्नों से विचार करने पर पता चला कि तीनों ही लग्नों के स्वामियों (Self) का सबन्ध उन लग्नों से तृतीयेश तथा मगल और बुध से हो रहा है जिससे यमल रूप में उत्पन्न होना सिद्ध हो रहा है।

कुम्भ लग्न का उल्लेख करते हुए "देवकेरल"कार लिखते है—

शास्त्रोक्ति—षष्ठे चन्द्रे तत् त्रिकोणे मन्दे कुजसमन्विते।
यमलौ योगजातस्य यमल द्वय नाशनम् ॥

अर्थात् चन्द्र यदि कुम्भ लग्न से छठे हो और शनि तथा मंगल दोनो दशम से हों तो यमली योग बनता है अर्थात् मनुष्य जोडे के रूप मे उत्पन्न होता है। यहा लग्नाधिपति का योग तृतीयाधिपति तथा तृतीय भाव (भाई) के कारक मगल मे हुआ है और वह भी
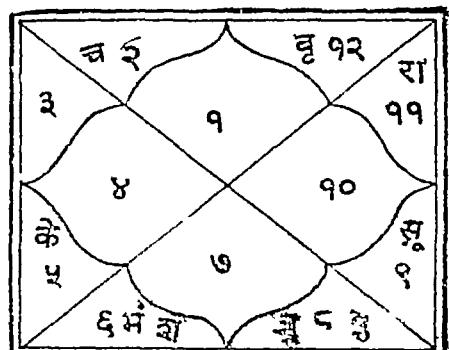
चन्द्र से त्रिकोण स्थान मे, यह यमल योग का कारण हुआ है। बुध का इस श्लोक मे उल्लेख नही परन्तु बुध का योग मे सम्मिलित होना योग को पक्का बनाता है क्योकि बुध बहुसख्यक (Plural) है।

: ४७ :

राज्यत्याग योग

परिभाषा—जब राज्यद्योतक अगो—दशम भाव, दशमभाव पति तथा दशम भाव कारक अर्थात् सूर्य पर पृथक्ताजनक प्रभाव हो अर्थात् शनि, राहु आदि अथवा इनसे अधिष्ठित राशियो के स्वामियो का प्रभाव हो और उस मे लग्नेश, तृतीयेश अथवा एकादशेश भी सम्मिलित हो तो राज्य-त्याग (Abdication) का योग बनता है।

हेतु –निज द्वारा राज्यत्याग को (Abdication) कहते है। निज का प्रतिनिधि कुण्डली मे जहॉ लग्नेश है वहाँ तृतीयेश तथा एकादशेश भी है। अत इनमे से एक अथवा एक से अधिक पापी ग्रह, शनि सूर्य, राहु अथवा इन से अधिष्ठित राशियो के स्वामी होगे तो जो पृथक्ता, त्याग, सन्यास उन की युति दृष्टि आदि द्वारा होगा उस मे व्यक्ति का स्वतन्त्र कर्म (Self initiative or Deleberate action) सम्मिलित होगा।

उदाहरण—यह ड्यूक आफ विडसर की विख्यात कुण्डली है। इस महान् व्यक्ति ने अपने प्रेम विवाह की स्वतन्त्रता को बनाए रखने के लिये जानबूझ कर ब्रिटेन के राज्य पर लात मार दी थी। देखिये-राज्य-द्योतक तीनो के तीनो अग, दशम भाव, दशम भाव का स्वामी तथा दशम भाव का कारक अर्थात् सूर्य, शनि की
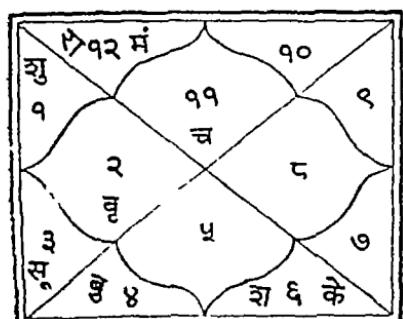
कु० स० ७५

पूर्ण दृष्टि प्रभाव में है और शनि तो पृथक्ताजनक ग्रह है ही। अब देखिये शनि के अधिपत्य की ओर, शनि न केवल लग्न का स्वामी है बल्कि चन्द्र लग्न का भी स्वामी है। अतः निज (Self) का पूर्ण प्रतिनिधित्व कर रहा है। अत शनि द्वारा जो राज्य का त्याग फलीभूत हुआ वह निज द्वारा हुआ अर्थात् जानबूझ कर और सोच समझ कर किया गया।

"देवकेरल ग्रन्थ के पृष्ठ १२ पर ग्रन्थकर्ता वृषभ लग्न के सबन्ध में कहते हैं।

शास्त्रोक्ति—लाभे शनियुते सूर्ये अबलांशस्य जातके ।
संपद्दाये पितारिष्ट देशत्याग विनिर्दिशेत् ॥

अर्थात् ग्यारहवे स्थान मे मीन राशि मे सूर्य तथा शनि स्थित हों तो जन्म से द्वितीय दशा में अवलाश मे उत्पन्न बालक के पिता को शारीरिक कष्ट होता है और ··· इस योग का फल देश त्याग भी कहना चाहिये। भाव यह है कि चतुर्थेश अपने स्थान से अष्टम मे पड़कर शनि के त्यागात्मक प्रभाव में है अत उसे चतुर्थ (जन्म भूमि) का त्याग करना पडेगा। श्लोक से सिद्धान्त यह लेना है कि शनि पृथक्कारी है।

: ४८ :

रुचक योग

परिभाषा—जब मङ्गल अपनी उच्च राशि मे अथवा अपने क्षेत्र मे होकर लग्न से केन्द्र मे स्थित होता है तो "रुचक" नाम का योग बनता है। यह भी पञ्चमहा पुरुष योग का एक अग है।

फल—इस योग में उत्पन्न हुए मनुष्य को बल की प्राप्ति सेना आदि की प्राप्ति रुधिर का बल, साहस, शूरवीरता, क्रूरस्वभाव, धन आदि की प्राप्ति होती है।

हेतु -मगल जब केन्द्र मे भी होगा और उच्चता आदि मे भी तो स्पष्ट है कि बहुत बलवान् होगा । और पुन जब केन्द्र मे स्थित होगा तो जहाँ अत्यधिक बलवान् हो जावेगा वहाँ लग्न से केन्द्र मे होने के कारण लग्न को अपने उपर्युक्त गुण-दोष भी देगा ।

शास्त्रोक्ति —

दीर्घायु स्वच्छकान्ति बंहुरुधिरबल, साहसी चाप्तसिद्धि
चारुभ्रू नीलकेश समकरचरणो मन्त्रवित् चारुकीर्ति ।
रक्तश्यामोऽतिशूरो रिपुबलमथन कम्बुकण्ठो महौजा,
क्रूरो भक्तो नराणाँ द्विजगुरुविनत क्षामजानूरू जङ्घः ।।

अर्थ—रुचक योग मे उत्पन्न होने वाला, मनुष्य दीर्घायु वाला, स्वच्छ कान्ति से युक्त, बहुत रुधिर बल से युक्त, साहस वाला, सुन्दर हाथ पाँव वाला, मन्त्र जानने वाला, अच्छे यश से युक्त, कालिमा लिए हुआ लाल रग वाला, बहुत शूरवीर रिपुओं का नाश करने वाला, सिंह की सी गरदन वाला, महान् ओज से युक्त, क्रूर जनो की सेवा करने वाला, देवताओ तथा ब्राह्मणो का भक्त, शरीर के मध्य से कृश, अच्छी उरु तथा जङ्घाओ वाला होता है ।

(11) जात श्रीरुचके बलान्वितवपु श्रीकीर्तिशीलान्वित,
शास्त्री मन्त्रजपाभिचारकुशलो राजाथवा तत्सम ।।
लावण्यारुणाकान्तिः कोमल तनु स्त्यागी जितारिर्धनी,
सप्तत्य ब्दमितायुष सहा सुखी सेना तुरंगाधिप ।।

(जा० पारिजात ७-६०)

अर्थात् रुचक योग मे उत्पन्न होने वाला मनुष्य बलवान् शरीर वाला, धन, यश तथा शक्ति से युक्त, शास्त्रज्ञ, मन्त्र शास्त्र के जानने वाला, राजा अथवा उसके बराबर, लावण्य तथा लाल कान्ति युक्त कोमल शरीर वाला त्यागी, शत्रु पर विजय प्राप्त करने वाला, धनी, सत्तर वर्ष तक सुख पूर्वक जीने वाला सेना तथा हाथी घोडे की सवारी से युक्त होता है ।

कुं० सं० ७६
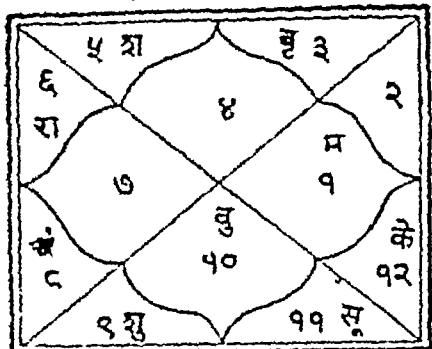
यह कुण्डली जर्मन कैसर की है। यहाँ मङ्गल प्रमुख दशम केन्द्र में निज राशि मेष में स्थित होकर रुचक नाम का महा पुरुष योग बना रहा है।

: ४६ :

लग्नपोत्थ रोग योग

परिभाषा—निर्बल अथवा नीच लग्नेश, लग्नस्थ जिस राशि का स्वामी हो, वह राशि काल पुरुष के जिस अंग की अभिव्यक्ति करती हो उसमें कष्ट अथवा रोग होता है तथा जिस भाव में ऐसा लग्नेश स्थित हो उसमें भी कष्ट अथवा रोग होता है।

फल हेतु—प्रत्येक राशि मनुष्य के किसी न किसी अंग का प्रतिनिधित्व करती है जैसे मेष सिर, वृषभ मुख, मिथुन गला, बाजू, कर्क छाती, सिंह पेट, कन्या ,अन्तड़ियाँ, तुला लिङ्ग स्थान, वृश्चिक अण्डकोष, धनु नितम्ब, मकर जानु, कुम्भ जंघा का निचला भाग, मीन पाँव। मेष कहीं भी पीड़ित हो थोड़ी बहुत सिर को कष्ट पहुँचायेगी, वृषभ कहीं भी पीड़ित हो मुख में कष्ट देगी इत्यादि परन्तु मेष यदि लग्न मे स्थित हो तो मंगल सिर का विशेष प्रतिनिधित्व करेगा। इसी प्रकार वृषभ यदि लग्न मे स्थित हो तो शुक्र मुख का विशेष प्रतिनिधित्व करेगा इत्यादि। अत. लग्नेश शुक्र पर यदि पाप प्रभाव हो तो मुख में रोग का होना निश्चित समझा जायेगा। इसी प्रकार मिथुन लग्नेश जब पीड़ित निर्बल हो तो साँस की नाली मे, लग्नेश चन्द्र ऐसा हो तो छाती मे, लग्नेश सूर्य हो तो पेट मे, कन्या लग्नेश बुध

यदि ऐसा हो तो अन्तडियो मे, तुला लग्नेश शुक्र मूत्रेन्द्रिय मे, वृश्चिक लग्नेश मगल ऐसा हो तो अण्डकोषो मे, धनु लग्नेश ऐसा हो तो नितम्बो मे मकर लग्नेश ऐसा हो तो जानु मे, कुम्भ लग्नेश यदि ऐसा हो तो टाँग के निचले भाग मे और यदि मीन लग्नेश गुरु इस प्रकार निर्बल नीच हो तो पाँव मे कष्ट अथवा रोग होता है।

शास्त्रोक्ति —

> **शशिनि विलग्ने कर्किणि कुजार्कदृष्टेऽथवा कुब्ज ।**
> **मीनोदये च दृष्टे कुजार्कि शशभि पुमान् भवति पगु ॥**
>
> **(सारावली ८-५९)**

अर्थात् चन्द्र यदि कर्क राशि का लग्न मे स्थित हो और मंगल तथा शनि से दृष्ट हो तो मनुष्य कुबडा हो जाता है और यदि मीन राशि लग्न मे हो और मंगल तथा शनि से दृष्ट हो तो लगडा हो जाता है। कर्क राशि तशा इसका स्वामी चन्द्र दोनो का लग्न से सम्बन्ध होने के कारण दोनों छाती का प्रतिनिधित्व करते है। अत उन पर शनि तथा मगल की दृष्टि छाती को यदि टेढा करके कुबडा बना दे तो आश्चर्य नही होना चाहिए। इसी प्रकार मीन लग्न पर जब दो पाप प्रभाव पडेगे तो मीन राशि प्रदिष्ट अग अर्थात् पाँव मे कष्ट आ ही जायेगा।

कु० स० ७७
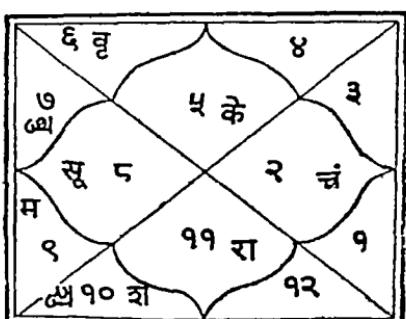
उदाहरण—यह व्यक्ति ३३ वर्ष की आयु मे समुद्री जहाज मे काम करते हुए जहाज के झडे (Mast) पर से गिर पड़ा। फलस्वरूप इसकी छाती तथा हाथ की बहुत सी हड्डियाँ टूट गई। परन्तु जीवन बच गया। यहाँ सूर्य लग्नेश होकर 'हड्डी' (Bones) का प्रतिनिधित्व कर रहा है और केतु से चतुर्थ होने क कारण उससे

बहुत प्रभावित हैं। चतुर्थ भाव में सूर्य दिक्‌बल से शून्य पड़ा है। सूर्य के एक ओर चोट देने वाला लग्नाधिपति (छठे से छठे का स्वामी) बुध है और दूसरी ओर क्षति कारक मंगल। इन सब कारणों से सूर्य ने लग्नाधिपति होने के कारण हड्डी में हानि पहुँचायी और पेट आदि सिंह राशि प्रदिष्ट अग में हानि पहुँचाई।

कु० स० ७८
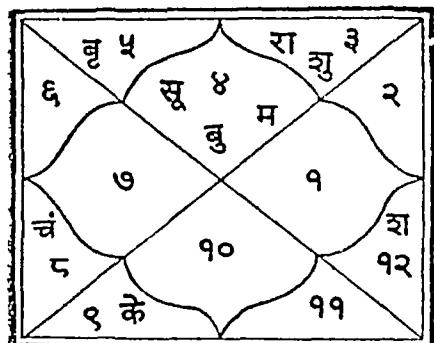
उदाहरण—इस व्यक्ति को १३ वर्ष की आयु मे जलोदर रोग हुआ। कारण यह है कि लग्नेश नीच होकर पञ्चम भाव में पड़ा है अतः पञ्चम भाव पेट मे जल सम्बन्धी (चन्द्र जलीय ग्रह होने के कारण) रोग हुआ।

: ५० :

लग्न योग

परिभाषा—लग्न में तीन शुभ ग्रह स्थित हो तो राजा बनाते है और यदि तीन पापी ग्रह हों तो समस्त लोक मे अपमानित; रोग, भय तथा शोक से पीड़ित; पेटू; दरिद्री; बनाते है।

हेतु—लग्न का सबन्ध, चूँकि, राज्य, धन, शरीर, स्वास्थ्य, मान, से है। अत: तीन शुभ ग्रहों की लग्न में स्थिति इन सब गुणों की वृद्धि करेगी। इसके विपरीत लग्न मे तीन पापी ग्रहो की स्थिति इन सब बातों का नाश कर देगी।

शास्त्रोक्ति (१)—लग्ने त्रयो विगतशोकविवर्धितानां,
कुर्वन्ति जन्म शुभदाः पृथिवीपतीनाम्।
पापास्तु रोगभयशोकपरिप्लुतानां,
बह्वाशिनां सकललोकतिरस्कृतानाम्॥

(सारावली ३४-१२)

अर्थात्—लग्न मे यदि तीन शुभ ग्रह स्थित हों तो शोकरहित सुसमृद्ध राजा को जन्म देते हैं और यदि लग्न मे तीन पापी ग्रह स्थित हो तो रोग, भय, शोक से परिपूर्ण, बहुभक्षक तथा सारे लोगो से अपमानित दरिद्री मनुष्यो को जन्म देते है।

(२) लग्नस्यादिममध्यमान्तिमयुतो लग्नाधिनाथ. क्रमात्,
कुर्यात् दण्डपतिं च मण्डलपतिं ग्रामाधिपं तच्छिशुम्।
शुक्रार्येन्दुजवीक्षितश्च सहितश्चेत्सौम्यवर्गस्थित,
स्वोच्चे वाऽखिलभूमिपालममुं भूपालवद्यं वरम्॥
(उत्तरकालामृत, ४-७)

अर्थात्—यदि लग्न का स्वामी लग्न मे स्थित हो और लग्न के आदि, मध्यम अथवा अन्तिम भाग मे स्थित हो तो मनुष्य को क्रमशः (क) न्यायाधीश (ख) लोगों मे मुख्य (ग) ग्राम का स्वामी बनाता है और यदि शुक्र, गुरु, बुध से युक्त अथवा दृष्ट हो अथवा अपनी उच्च राशि अथवा शुभ वर्ग मे हो तो मनुष्य को राजाधिराज बना देता है।

कु० स० ७९
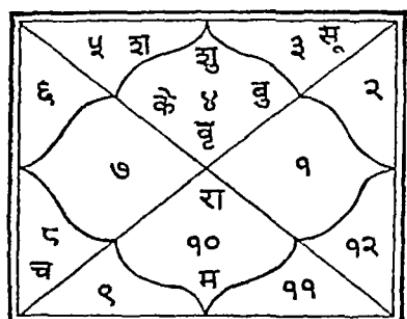
उदाहरण—यह कुण्डली महा-महाअध्यापक प० नारायण जी व्यास की है। यहाँ लग्न मे तीन शुभ ग्रह शुक्र, बुध, तथा गुरु विद्यमान हैं। अत. लग्न-योग की सृष्टि हुई। यह लग्न पर पाप मध्यत्व के कारण योग का उत्तम फल नही कहा जा सकता।

: ५१ :

लक्ष्मी योग (क)

परिभाषा—नवम भाव का स्वामी अपनी उच्च राशि का, अपनी

मूल त्रिकोण राशि का अथवा अपने क्षेत्र, का होकर लग्न से केन्द्र में स्थित हो और लग्नाधिपति बलवान् हो तो 'लक्ष्मी' योग होता है।

फल—इस योग मे उत्पन्न मनुष्य बहुत [गुणी बहुत देशों का स्वामी, विद्या, कीर्ति तथा सुन्दरता से युक्त, यशस्वी, राजाओं से पूज्य राजा होता है।

शास्त्रोक्ति—केन्द्रे मूलत्रिकोणस्थे भाग्येशे परमोच्चगे।
लग्नाधिपे बलाढ्ये च लक्ष्मी योग ईरितः ॥
गुणाभिरामो बहुदेशनाथो विद्यामहाकीर्तिरनंगरूपः।
दिगन्तविश्रान्तनृपालवन्द्यो, राजाधिराजो बहुदारपुत्रः ॥

(जा० पारि०; ७-१५२-१५३)

हेतु—भाग्याधिपति को उक्त प्रकार से बलवान् होना भाग्य की वृद्धि करेगा ही। ऐसे प्रबल भाग्याधिपति का केन्द्र मे स्थित होना भाग्य का सबन्ध लग्न (Self) से स्थापित कर देता है।

उदाहरण—यह कुण्डली अलैक्ज़ेन्डर सम्राट् की है। यहाँ नवम भाव का स्वामी शनि प्रमुख दशम केन्द्र मे स्वक्षेत्र में स्थित है। और लग्नाधिपति शुक्र एक शुभ स्थान (द्वितीय) में मित्र राशि का स्थित है। अतः बलवान् है। इस प्रकार यह लक्ष्मी योग बना।

कु० स० ८०
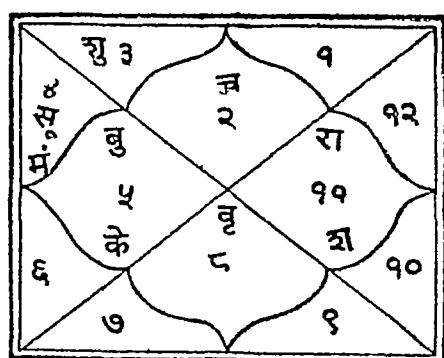
: ५२ :

लक्ष्मी योग (ख)

परिभाषा—यदि नवम भाव का स्वामी तथा शुक्र अपनी उच्च अथवा स्वराशि में स्थित होकर केन्द्र अथवा त्रिकोण में स्थित हो तो

"लक्ष्मी" योग होता है ।

फल—इस योग मे मनुष्य धार्मिक, सुशील स्त्री वाला, रोगरहित धनवान्, तेजस्वी, अपने जनो की रक्षा करने वाला, मान आदि सामग्री से युक्त, दानी, राजासा, होता है ।

हेतु—नवमाधिपति का स्वराशि स्थिति तथा केन्द्र आदि स्थिति द्वारा बलवान् होना और पुन शुभ युक्त होना भाग्य की अत्यधिक वृद्धि करेगा ऐसा युक्ति सम्मत है। भाग्य के साथ शुक्र का सबन्ध होने से सुन्दर स्त्री का योग और स्वय भाग्य के सुन्दर होने से नवम भाव सबन्धी बातो की प्राप्ति अर्थात् राज्य अथवा राज्यकृपा की उपलब्धि। पुन यह बात भी है कि दो बहुत बली तथा शुभ ग्रह लग्न से केन्द्र मे होकर लग्न को भी बलवान् कर देगे जिससे धन राज्य आदि की प्राप्ति निश्चित हो जायेगी ।

शास्त्रोक्ति—स्वर्क्षोच्चे यदि कोणकटण्कयुतौ भाग्येशशुक्रावुभौ,
लक्ष्म्याख्योऽथ तथाविधे हिमकरे गौरीति जीवेक्षिते ।।

(फलदीपिका६-२१)

अर्थात् भाग्येश तथा शुक्र यदि केन्द्र अथवा कोण मे अपनी राशि अथवा अपनी उच्चराशि मे स्थित हो तो "लक्ष्मी" नाम का योग बनता है ।

(11) **नित्यं मंगलशीलया वनितया क्रीडति अरोगी धनी,**
तेजस्वी स्वजनान् सुरक्षति महालक्ष्मीप्रसादालय ,
गोष्ठान्दोलिकया प्रयाति तुरगस्तम्बेरमध्यासितो,
लोकानन्दकरो महीपतिवरो दाता च लक्ष्मीभव ।।

(फ० दी० ६-२४)

अर्थात् नित्य मगल मयी सुशीला स्त्री से क्रीडा करने वाला, रोग रहित, धनी, तेजस्वी, निज जनो की रक्षा करने वाला, घर मे महान् धन की प्राप्ति, गोष्ठ वाहन आदि से युक्त, लोगो को आनन्दकारी, राजा तथा दाता ऐसा मनुष्य इस योग मे उत्पन्न होता है ।

कु० सँ० ८१

उदाहरण—यह महात्मा गाँधी की कुण्डली है। यहा नवमाधिपति बुध्र तथा शुक्र लग्न मे एकत्रित है और शुक्र स्वक्षेत्री है। लग्नाधिपति शुक्र गुरु से दृष्ट होने से बलवान् अत. "लक्ष्मी योग" बना।
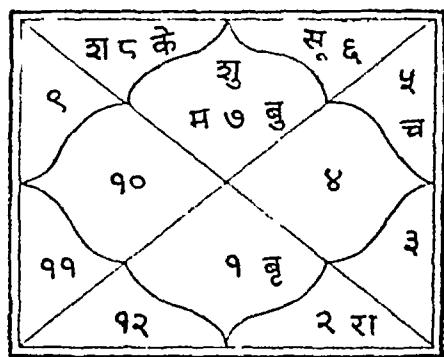
: ५३ :

लाटरी से धनप्राप्ति योग

कुण्डली मे पंचम भाव "सट्टे" तथा "लाटरी" का स्थान है। पचम भाव मे एक तो बात यह है कि यह भाव नवम भाव से नवम होने के कारण नवमवत् ही विचार किये जाने योग्य है। दूसरे शब्दो में "भाग्य" का द्योतक भी पचम भाव है और "भाग्य" शब्द का प्रयोग हम प्राय. उन स्थितियों में करते है जबकि हमे पुरुषार्थ के परिणामो पर बहुत कम विश्वास होता है और दैव योग से, प्रभु कृपा से, अचानक, आशातीत रूप से, अधिकारी न होते हुए जब हमको कोई वस्तु, धन अथवा पदवी मिलती है। दूसरे 'लाटरी" का धन प्राय सारे का सारा जनता से इकट्ठा किया होता है अत उसे "जनता" का धन कहना उपयुक्त है और उधर कुण्डली में भी जनता का स्थान चतुर्थ होने से जनता का धन कुण्डली में चतुर्थ से द्वितीय अर्थात् पचम बनेगा।

एक और बात जो 'लाटरी' के सम्बन्ध मे हम को स्मरण रखनी चाहिये वह यह है कि लाटरी मे जब कोई इनाम किसी को प्राप्त होता है तो वह प्राय उसकी आशा नही कर रहा होता। इनाम का प्राप्त होना उसके लिए एक अचानक (Unexpected) घटना होती है और अचानक घटनाओ के लिये राहु तथा केतु छाया ग्रह विख्यात ही है। अत. यदि राहु अथवा केतु का योग पंचम (अथवा

नवम अथवा धन अथवा लाभ भाव) से हो जाये तो पचमेश अचानक धन देने के ज्यादा योग्य बन जायेगा और ऐसी स्थिति मे यदि पच-मेश बलवान् होकर केन्द्रादि मे शुभ प्रभाव मे हो तो लाटरी के धन का योग बनायेगा । बुध के सबन्ध मे भी कहा है कि यह ग्रह सद्य-प्रतापी है अर्थात् शीघ्र ही अपना प्रताप दिखलाता है । बुध के इस "सद्य प्रतापी" होने के गुण के कारण हम यह भी कह सकते हैं कि यदि बुध पचमेश आदि बनता हो और पचम आदि स्थानो मे राहु अथवा केतु की स्थिति हो तो "लाटरी" मिलने की शर्तों की और अधिक पूर्ति ज्योतिष की दृष्टि मे होती है और फिर यदि बुध आदि पचमेश आदि छाया ग्रहो से अधिष्ठित राशियो के स्वामी होकर लग्न के लिये भी शुभ अथवा योगकारक हो तो सोने पर सुहागा है । फिर तो लाभ की मात्रा भी बढ जाती है और यदि योगकारक उपर्युक्त प्रकार का पचमेश आदि दो अथवा तीन लग्नो से शुभ अथवा योगकारक बन जाये तो क्या कहना, लाटरी के धन की सख्या कई गुना अधिक हो जायेगी । अत. **लाटरी का योग** इस प्रकार है —"जब कोई ग्रह अधिकतर लग्नो का मित्र होता हुआ पमचस्थ अथवा अन्य धनप्रद भावस्थ राहु अथवा केतु-अधिष्ठित राशि का स्वामी हो और बलवान् हो तो लाटरी के धन से लाभ देता है । विशेषतया यदि बुध ऐसा ग्रह बनता हो ।"

: ५४ :

वर्गोत्तम योग

परिभाषा—लग्न नवाश का स्वामी उत्तम गण मे हो और अथवा चन्द्राधिष्ठित नवाशपति भी उत्तम गण मे हो और वह नवांशपति चन्द्र को छोडकर चार ग्रहो द्वारा दृष्ट हो तो वर्गोत्तम योग बनता है ।

फल—इस योग में जन्म लेने वाला यदि अधम कुल मे भी उत्पन्न हो तो भी राज्य को प्राप्त करता है ।

हेतु—लग्न अथवा चन्द्र नवांशपति का वही फल है जो लग्नेश अथवा चन्द्राधिष्ठित राशि के स्वामी का है। अत: यह दोनो नवाशपति यदि उत्तम वर्गो में स्थित होगे तो स्पष्ट है कि लग्न तथा चन्द्र को बहुत बल मिलेगा। और फिर लग्न अथवा चन्द्र का चार ग्रहो द्वारा दृष्ट होना अपने मे लग्न अथवा चन्द्र को बलवान् बनाने की क्षमता रखता है। इस प्रकार लग्नो के अत्यन्त बल के फलस्वरूप राज्य की प्राप्ति होगी।

: ५५ :

व्यभिचार-योग

परिभाषा—पुरुष की कुण्डली में राहु से आक्रान्त स्त्री ग्रह चतुर्थेश और स्त्री की कुण्डली मे राहु आक्रान्त पुरुष ग्रह चतुर्थेश जब सप्तम भाव तथा सप्तमेश से युति दृष्टि द्वारा सबन्ध स्थापित करता है तो पुरुष अथवा स्त्री व्यभिचारी हो जाता है।

हेतु—व्यभिचार क्या है? जब कोई व्यक्ति अपनी विवाहिता स्त्री को अथवा कोई स्त्री अपने परिणीता पति को त्याग कर अन्य स्त्री से अथवा अन्य पुरुष से मैथुन सम्बन्ध स्थापित करता है तो इस कार्य का नाम "**व्यभिचार**" है। आम जनता अथवा सर्वसाधारण (Masses) का भाव शास्त्रों ने चतुर्थ निश्चित किया है। "ज्योतिष तत्व" मे श्री चक्रधर जोषी लिखते हैं कि सुखेश जब सप्तम भाव में होता है तो मनुष्य "प्रभूत वनिता" अर्थात् बहुत स्त्रियों वाला होता है। चाहे यह योग सर्वथा सत्य न भी हो इतना अवश्य है कि व्यक्ति के मैथुन का व्यापार चतुर्थ से अर्थात् सर्व साधारण अन्य स्त्रियों से होने लगेगा विशेषतया उस अवस्था में जबकि चतुर्थेश एक स्त्री ग्रह हो और राहु के किसी न किसी प्रभाव में भी हो। चतुर्थेश पर राहु का प्रभाव जनता की स्त्री को अथवा जनता में से स्त्री को अन्यता (Foreignness देता है क्योंकि राहु "जात्यन्तर" ग्रह है। इसी प्रकार जब

स्त्री की कुण्डली मे चतुर्थेश पुरुष ग्रह होगा और वह राहु के प्रभाव को लेकर काम कर रहा होगा तो वह "अन्य" पुरुष का पूर्ण प्रतिनिधित्व करेगा।

यदि पुरुष की कुण्डली मे उपर्युक्त राहु-आक्रान्त चतुर्थेश ग्रह का सप्तम भाव, उसके स्वामी तथा उसके कारक अर्थात् शुभ सभी से पूर्ण सबन्ध हो तो वह व्यक्ति उस अन्य स्त्री से पहली स्त्री के रहते हुए विवाह कर लेगा।

शास्त्रोक्ति—सुखेशे राहुसयुक्ते दशाया राजविग्रहम्।
स्थानच्युतिप्रवासादिक्लेश प्राप्नोति भूरिश ॥
(देवकेरल पृष्ठ १६४)

सुखेश अर्थात् चतुर्थ भाव का स्वामी राहु से युक्त हो तो राहु अपनी दशा अन्तदर्शा मे राजविग्रह (जनता का राज्य से विद्रोह), स्थान से हट जाना, प्रवास आदि से मनुष्य बहुत क्लेश उठाता है। भाव यह कि चतुर्थ स्थान साधारण "जनता" का भी है।

: ५६ :

वसुमत योग

परिभाषा—सारे के सारे नैसर्गिक शुभ ग्रह चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र यदि लग्न अथवा चन्द्र लग्न से उपचय स्थान मे स्थित हो तो "वसुमत" योग होता है।

फल—इस योग मे उत्पन्न होने वाले को बहुत द्रव्यो की प्राप्ति होती है।

हेतु—जहाँ तक द्रव्यों की प्रचुर मात्रा मे प्राप्ति का प्रश्न है "उपचय" शब्द का अर्थ ही इसका समाधान कर रहा है। उपचय का अर्थ है खूब इकट्ठा करना। जब चार चार ग्रह प्राप्ति की ओर ले जाये तो प्रचुर मात्रा मे द्रव्यों की प्राप्ति युक्तियुक्त है।

शास्त्रोक्ति—"चन्द्राद् वा वसुमान् तयोपचयगै र्लग्नात् समस्तै शुभै ।
तिष्ठेयु स्वगृहे सदा वसुमति द्रव्याणि+अनल्पानि अपि ॥
(फ० दी० ६—१९,२०)

: ५७ :

वासरपति योग

परिभाषा—यदि किसी मनुष्य का जन्म शुभ दिन में अर्थात् सोमवार, बुधवार, वृहस्पति अथवा शुक्रवार हुआ हो और चन्द्र, बुध गुरु अथवा शुक्र (जैसा जन्म हो) सूर्य के साथ स्थित हो तो वासरपति योग बनता है ।

फल—इस योग मे उत्पन्न मनुष्य नाना प्रकार के पदार्थ तथा सुखो को प्राप्त होता है ।

हेतु—सूर्य का किसी शुभ ग्रह से युक्त होना अपने आप मे शुभ फलदायक है क्योकि सूर्य लग्नवत् है । पुन: जब सूर्य के साथ रहने वाला शुभ ग्रह उस शुभ वार का भी स्वामी होगा जिस वार मे कि जन्म हुआ है तो शुभ वार की शुभता भी सूर्य को अर्थात् सूर्यलग्न को प्राप्त होगी जिसके फलस्वरूप नाना प्रकार की सुख-सुविधाओं तथा द्रव्यों की प्राप्ति सुसगत होगी । (देखिये नियम सख्या १२)

शास्त्रोक्ति (i)—**"जन्मेऽर्के शुभवासरेण सहिते नानार्थसौख्यं वदेत्** " । **(देवकेरल श्लोक ३०२९ पृष्ठ ३०२)**

कुण्डली में सूर्य यदि शुभवार पति के सहित हो तो नाना प्रकार के अर्थो तथा सुखों की प्राप्ति मनुष्य को कहनी चाहिये ।

(ii) **वाराधीशे तुलारूढ़े स्त्रीलोलसुरतप्रिय** ।

अर्थात् जिस वार में जन्म हो उसका स्वामी यदि तुला राशि में हो तो स्त्रियों मे आसक्त (Sex Ridden) होता है । भाव यह कि वार का मनुष्य की प्रकृति तथा जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है ।

: ५८ :

विपरीत राजयोग

परिभाषा—जब छठे, आठवे तथा बारहवे अनिष्ट घरो के स्वामी, आठवे, बारहवे, छठे मे हो अथवा इन भावो मे अपनी राशि मे स्थित हो और ये ग्रह केवल परस्पर ही युक्त अथवा दृष्ट हो, दूसरे शुभ घरो के स्वामियो की युति अथवा दृष्टि उन पर न हो तो, विपरीत राज योग बनता है।

फल - राजयोग की प्राप्ति अर्थात् धन, यश, पदवी, राज्य आदि की प्राप्ति।

हेतु—शुभ फल प्राप्ति के दो ही तरीके हैं। एक तो यह कि शुभ घरो जैसे द्वितीय, चतुर्थ, पचम, सप्तम, नवम, दशम, एकादश आदि के स्वामी बली हो दूसरा यह कि अशुभ घरो तृतीय, षष्ठ, अष्टम, द्वादश घरो के स्वामी निर्बल हो। दूसरा तरीका चूंकि पहले के विपरीत है और दुर्लभ है अत इसको विपरीत राजयोग के नाम से पुकारा है।

शास्त्रोक्ति—रन्ध्रेशो व्ययषष्ठगो, रिपुपतौ रन्ध्रे व्यये वा स्थिते।
रिफेशोपि तथैव रन्ध्ररिपुभे यस्यास्ति तस्मिन्वदेत्,
अन्योन्यर्क्षगता निरीक्षणयुताश्चन्यैर युक्तेक्षिता,
जातो सौ नृपति. प्रशस्तविभवो राजाधिराजेश्वर ॥
(उत्तरकालमृत खण्ड ४ श्लोक २२)

उदाहरण—यह कुण्डली एक करोडपति सज्जन की है। यहा बुध दो अनिष्ट स्थानो तृतीय तथा द्वादश का स्वामी है और वह तृतीय भाव से अनिष्ट स्थान अर्थात् तृतीय मे और द्वादश से भी अनिष्ट अर्थात् षष्ठ स्थान मे है। अत दोनो भावो तृतीय तथा द्वादश को हानि पहु चा रहा है और स्वय भी हानि उठा रहा है। पुन वह बुध शत्रु राशि मे स्थित है तथा सूर्य के साथ अस्त है। पुनः इस बुध

पर शनि की पाप दृष्टि है। यही हाल षष्ठाधिपति गुरु का है जो कि षष्ठ से द्वादश होकर सूर्य से अस्त और पापी शनि से दृष्ट है। इस प्रकार तीन अनिष्ट भावों तृतीय, षष्ठ तथा द्वादश के स्वामी गुरु तथा बुध पापयुक्त-पापदृष्ट हैं बल्कि दोनों पर राहु की भी दृष्टि है और किसी शुभ ग्रह की दृष्टि नही। इस कारण से तृतीय का अभाव, षष्ठ का ऋण तथा द्वादश की 'हानि' सब का नाश हो चुका है जिसके फल स्वरूप अत्युत्तम धन सम्पत्ति की प्राप्ति का "विपरीत राजयोग" बन रहा है।

कु० सं० ८२

: ५९ :
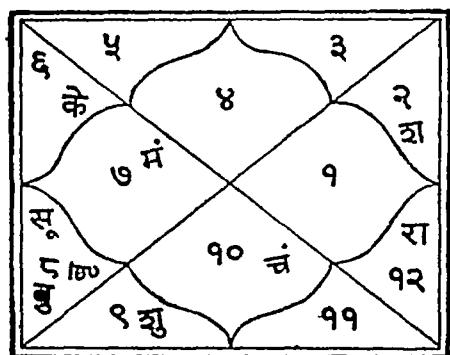
विवाह के अभाव का योग

परिभाषा—जब सप्तम भाव, सप्तमेश तथा शुक्र तीनों, पीडित तथा निर्बल हों और इनमें किसी पर भी कोई शुभ युति अथवा दृष्टि न हो तो मनुष्य को पत्नी की प्राप्ति नही होती।

हेतु—स्पष्ट है कि विवाह के तीनों अग (Factors) निर्बल होने से विवाह न होगा।

उदाहरण—यह एक व्यक्ति की कुण्डली है जिसने विवाह नहीं किया। यहाँ सप्तम भाव मे केतु का पाप प्रभाव विद्यमान है और उस भाव पर युति अथवा दृष्टि द्वारा कोई शुभ प्रभाव नही पड़ रहा। सप्तमाधिपति स्वय सप्तम कारक है अर्थात् शुक्र है और यह अपने पूर्ण प्रतिनिधित्व को लेकर शनि और मगल दो पापी ग्रहो से योग कर रहा है और तीसरे पापी एव शत्रु ग्रह सूर्य की राशि मे बैठा है और चौथे पापी केतु द्वारा जो इससे दशम है प्रभावित है और पुन शुक्र पर कोई शुभ प्रभाव नही। अत विवाह की क्या

कु० स० ८३
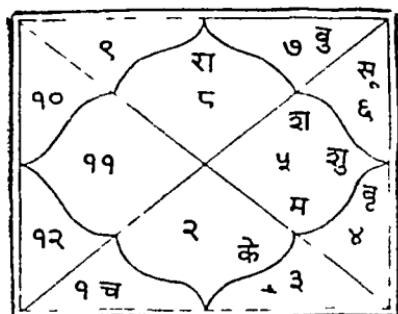
गु जाइश हो सकती हैं। ध्यान रहे कि शुक्र चन्द्रलग्न से भी सप्तमेश होकर पीडित है।

अर्थात् भाव (यहाँ सप्तम) भावेश (यहाँ शुक्र) और भाव के कारक (यहा पुन शुक्र) द्वारा ज्योतिष सबन्धी समस्या का समाधान करना चाहिये।

शास्त्रोक्ति—भावात् भाव पतेश्च कारकवशात् तत् तत्फलं योजयेत्

६० विज्ञान योग

परिभाषा—जब अष्टमेश तथा तृतीयेश एकत्रित हो और बलवान् हो तो विज्ञान योग बनता है।

फल—इस योग मे जन्म लेने वाला मनुष्य विज्ञान (Science) जानने वाला, अनुसन्धान मे रुचि रखने वाला, आविष्कारक (Inventor) तथा खोजी (Discoverer) होता है।

हेतु—अष्टम "गभीर खोज" का स्थान है और भावात् भावम् के सिद्धान्तानुसार तृतीय भी भारी खोज आदि का स्थान हुआ। दोनों भावो के स्वामियो का परस्पर योग खोज अनुसन्धान आविष्कार का द्योतक है। विशेषतया जबकि दोनो पर शुभ प्रभाव भी हो।

उदाहरण—यह कुण्डली जगत् विख्यात वैज्ञानिक आइन्स्टाइन की है जिस ने "सापेक्षवाद" (Theory of relativity) को ससार के सामने रखा और जिसने सिद्ध किया कि मादा को शक्ति मे परिवर्तित किया जा सकता है। यहाँ शनि अष्टमेश है और सूर्य तृतीयेश दोनो प्रमुख दशम केन्द्र मे बलवान् होकर बल्कि दो नैसर्गिक शुभ
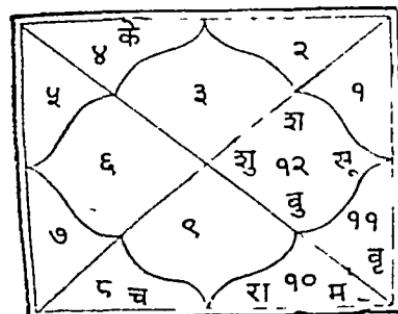
कु० स० ८४

ग्रहों बुध तथा शुक्र के साथ होकर, स्थित है। अतः बलवान विशेष योग की सृष्टि कर रहे है।

: ६१ :

विदेशयात्रा योग

परिभाषा—जब अष्टम भाव तथा उसके स्वामी पर पापी प्रभाव की अधिकता होती है तो विदेश जाने का योग बनता है।

फल—इस योग में जन्म लेने वाला व्यक्ति विदेश यात्रा करता है चाहे यात्रा का उद्देश्य कुछ भी हो।

हेतु—अष्टम स्थान विदेश (overseas) का है इस स्थान पर पाप प्रभाव से विदेश जाने का योग बनता है। यह पुरातन योग है इस मे जान पर भी बनती थी और कुछ हद तक आज भी जान (अष्टम) को खतरा रहता है।

शास्त्रोक्ति—अष्टं गतस्य भानोर्दशा क्षयं नयति सर्वगात्रं च।
भ्रमयति देशात्देशं प्रमापयत्यपिच विक्लिष्टम्॥
(सारावली; ४०-५६)

उदाहरण—यह एक व्यक्ति की कुण्डली है जिस ने कई बार विदेश यात्रा की। यहां केतु की, सूर्य की, तथा शनि की पूर्ण दृष्टि अष्टम भाव पर है। अष्टमाधिपति गुरु अप्रिय स्थान मे, शत्रु राशि में मगल दृष्ट होकर पाप प्रभाव मे है। अत विदेशयात्रायोग की उत्पत्ति हो रही है।

कु० स० ८५
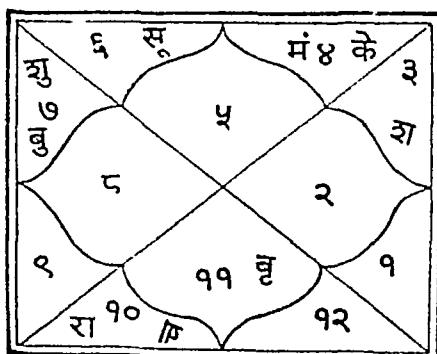
उदाहरण २—यह कुण्डली एक सज्जन की है जोकि ऊँचा शिक्षा

कु० स० ८६
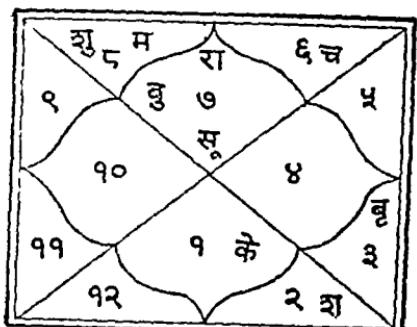
प्राप्त करने के लिये इङ्गलैंड गये थे। यहां अष्टम भाव पर तथा अष्टमेश दोनों पर दो पाप प्रभाव मगल तथा शनि के दृष्टिगोचर हो रहे हैं। अष्टमेश का द्वितीय स्थान मे द्वितीयेश के साथ बैठना बता रहा है कि विद्या (द्वितीय) विदेश (अष्टम) द्वारा भी सिद्ध होगी।

: ६२ :

वेशिवोशि योग

परिभाषा—सूर्य से द्वितीय स्थान मे ग्रह हो तो "वेशि" और द्वादश मे हो तो वासि अथवा वोशि और यदि इन दोनो मे ग्रह हो तो उभयचरी योग होता है।

फल—वेशि आदि स्थानो मे शुभ बलवान् ग्रह की स्थिति से धनादि की प्राप्ति होती है।

हेतु—द्वितीय द्वादश स्थिति से लग्न को अर्थात् बीच मे स्थित भाव को लाभ पहुँचता है। यहा सूर्य को लाभ पहुँचेगा, सूर्य को लाभ पहुँचने का अर्थ हुआ लग्नो मे से एक लग्न का बली हो जाना। अतः लग्न प्रदर्शित समस्त शुभ फल की प्राप्ति युक्तिसगत है।

शास्त्रोक्ति—व्ययधनयुतखेटै र्वासिवेशिदिनेशात्,
उभयचरिकयोगश्चोभयस्थानसस्थै ।
निजगृहसुहृद्- उच्चस्थानयातैश्च जाता,
बहुधनसुखयुक्ता राजतुल्या भवन्ति
(जा० पा० ७-१२१)

अर्थात् सूर्य से बारहवे ग्रह हो तो "वासी" दूसरे हो तो "वेशि" और दोनो मे हो तो "उभयचरी" योग होता है। वे ग्रह यदि स्वगृही

हों, मित्रराशिस्थ हो अथवा उच्च हों तो व्यक्ति बहुत धन और सुख से युक्त राजा के तुल्य होता है।

कु० सं० ८७

सर सी० पी० की कुण्डली पर पुन· देखिये, यहा सूर्य से द्वादश मे शुक्र तथा द्वितीय मे बुध है। दोनों शुभ है अत सूर्य को दोनों का शुभ फल प्राप्त हो रहा है और वेशि तथा वोशि दोनो योग बन रहे है।
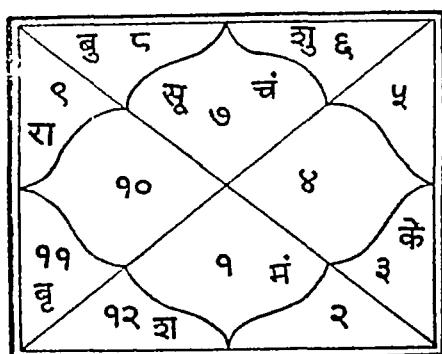
६३ पति-पत्नी वैमनस्य योग

परिभाषा—जब स्त्री की कुण्डली में शुक्र लग्नाधिपति होकर सप्तम भाव, सप्तमाधिपति तथा सप्तम कारक, तीनो, से अनिष्ट स्थान मे स्थित हो तो पत्नी का पति के प्रति महान् वैमनस्य होता है जिसके फलस्वरूप पत्नी पति की जान तक लेने को तैयार रहती है।

हेतु—लग्नाधिपति निज (Self) को दर्शाता ही है। स्त्री की कुण्डली मे उसका लग्नेश स्त्री को दर्शायेगा परन्तु जब शुक्र स्वय किसी स्त्री का लग्नाधिपति होगा तो स्पष्ट है कि वह उस स्त्री का पक्का प्रतिनिधि होगा इसलिये भी कि वह एक स्त्री ग्रह है और स्त्री का कारक भी है। ऐसा प्रतिनिधित्व प्राप्त शुक्र का सप्तम, सप्तमेश तथा गुरु से छठे आठवे आदि अनिष्ट अथवा शत्रुताद्योतक घरों में स्थित होना उसका उसके पति के प्रति विरोध प्रकट करेगा ही।

कु० स० ८८

उदाहरण—यह एक महिला की कुण्डली है। इस महिला ने अपने पति को विष दे दिया था। यहाँ देखिये लग्नाधिपति स्वय "स्त्री
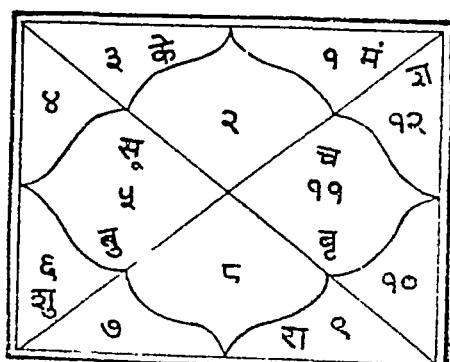
कारक" शुक्र है और नीच (Debased) होकर स्थित है मानोनीचता पर उद्यत है। यह शुक्र पति कारक गुरु से अष्टम मे, तथा सप्तमाधिपति मगल से षष्ठ मे स्थित है। दोनो स्थान शत्रुता के द्योतक हैं। शुक्र सप्तम भाव से एकादशेश मे है शुक्र के लिये एकादश स्थिति अनिष्टकारी मानी गई है। अत तीनो अगो से शुक्र अनिष्ट भावो मे है अत पति को हानि पहुँचाने पर उतारु है।

पति पत्नी की कुण्डली मिलाते समय उपरोक्त स्थिति का विचार उपयोगी सिद्ध होगा।

शास्त्रोक्ति—

दशेशशत्रोररिगेहभाजो,लग्नेशशत्रोरपिवाथ भुक्तौ ।
शात्रार्भयस्थानभयं तदास्य स्निग्धोपि शत्रुवमुपैति नूनम् ।।
(फलदीपिका २०-२८)

दशानाथ से षष्ठस्थान मे प्राप्त हुआ ग्रह तथा वह ग्रह जो लग्नेश का शत्रु है अपनी भुक्ति मे शत्रुभय, पदच्युति करवा देता है और ऐसी भुक्ति मे बडे प्यारे भी दुश्मन बन जाते हैं। भाव यह कि शत्रु (षडष्टक) स्थिति सदा सर्वदा शत्रुत्व को उत्पन्न करती है।

६४ विद्या-दिशा-ज्ञान योग

परिभाषा—द्वितीय भाव तथा उसके स्वामी पर पडने वाला प्रभाव विद्या की दिशा का सूचक होता है।

हेतु –जैसा कि हम "फलित सूत्र" के पृष्ठ ६७ पर उल्लेख कर चुके हैं कि कुण्डली मे "विद्या" का स्थान दूसरा है। कुण्डली का पचम स्थान चूँकि बुद्धि का है वह विद्या ग्रहण करने की शक्तिको तो अवश्य जतलाता है परन्तु विद्याकी दिशा,इसका प्रकार तो द्वितीय स्थान से ही देखा जायेगा। अत जिस प्रकार का प्रधान प्रभाव द्वितीय भाव तथा उसके स्वामी पर हो मनुष्य उसी लाइन की विद्या ग्रहण करता है। जैसे सूर्य, राहु तथा शनि ये, डाक्टरी के ग्रह हैं।

यदि इन में से दो अथवा तीन ग्रहों का द्वितीय भाव तथा उसके स्वामी पर प्रभाव पड़ता हो तो डाक्टरी विद्या (Medical Line) कहनी चाहिये। गुरु, बुध तथा शुक्र ये कानून (Law) के ग्रह है। यदि इन मे से दो अथवा तीन का प्रभाव द्वितीय भाव तथा द्वितीयेश पर पड़ रहा हो तो मनुष्य कानून की शिक्षा बढ़कर बी. ए. एल. एल. बी. (B A L. L. B.) आदि की उपाधि प्राप्त करेगा। यदि इस स्थान पर शनि तथा मगल का प्रभाव हो तो मिलिटरी की अथवा पुलिस की नौकरी की शिक्षा प्राप्त करेगा। यदि द्वितीय, द्वितीयेश पर पापी अष्टमेश का प्रभाव हो और अष्टम, अष्टमेश भी पाप प्रभाव मे हो तो विदेश जाकर विद्या प्राप्त करेगा।

उदाहरण (१)—कानूनी विद्या के लिये निम्नलिखित कुण्डलियाँ देखिये। ये कुण्डलियाँ कानूनी ज्ञान की दृष्टि से अध्ययन की जा रही है। कानूनी प्रेक्टिस के दृष्टि कोण से नही। कोई व्यक्ति कानून की जानकारी रखता हुआ भी हो सकता है कि वह कानून का काम न कर कोई और धन्धा करता हो। धन्धे का निर्णय तो लग्नों पर पड़े प्रभाव द्वारा निश्चित होगा। (देखिये हमारी पुस्तक "व्यवसाय का चुनाव")। ऊपर महात्मा गाँधी की कुण्डली में चूँकि द्वितीयाधिपति मगल पर तीनो के तीनों कानूनी ग्रहों गुरु, शुक्र, बुध का प्रभाव है। अत. महात्माजी ने कानूनी शिक्षा प्राप्त की।

कु० सं० ८९

कु० स० ६०

उदाहरण (२)—एक एडवोकेट महोदय की कुडली पृष्ठ १११ "**व्यवसाय का चुनाव**" से उद्धत करके लिखी जा रही है। इसमे शुक्र स्वय द्वितीयेश है और बुध से तथा शुक्र से प्रभावित है। और फिर गुरु की पूर्ण दृष्टि द्वितीय भाव पर है।

कु० स० ६१

उदाहरण (३)—यह कुण्डली एक हाई कोर्ट के न्यायाधीश की है। (देखिये पृष्ठ ११४ "व्यवसाय का चुनाव") यहाँ शुक्र स्वयं द्वितीयेश है और इसके आस-पास एक ओर बुध का प्रभाव है और दूसरी ओर गुरु का (केन्द्रिय प्रभाव-दशम होने के कारण)
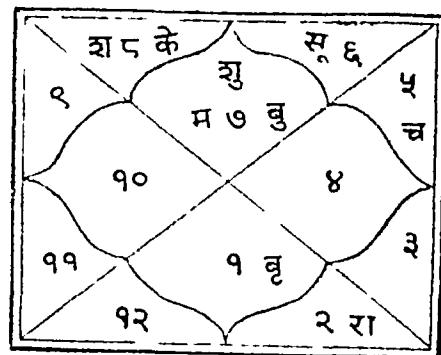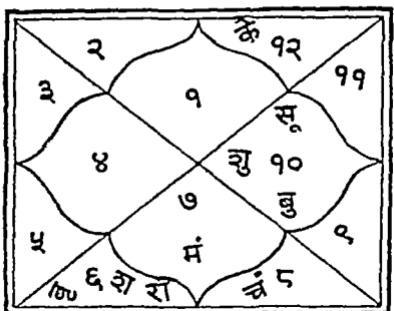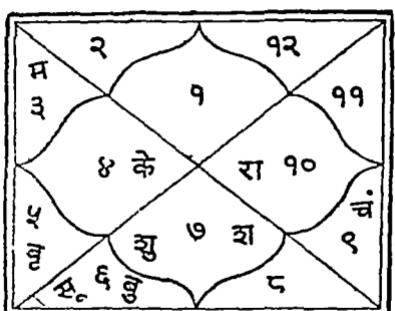
कुछ अन्य उदाहरण—कुछ डाक्टरो की कुण्डलियाँ भी उपस्थित की जा रही हैं।

कु० स० ६२

उदाहरण १ - यह कुडली मेडिकल कॉलेज आगरा के एक सर्जन की है। यहाँ द्वितीयाधिपति एक लग्न से नही, लग्नाधिपति चन्द्र लग्न तथा चन्द्र लग्नधिपति से भी द्वितीयाधिपति है और वह है सूर्य और पुन द्वितीय भाव मे बैठ कर डाक्टरी की ओर इशारा कर रहा है। चार लग्नो से द्वितीय भाव तथा

द्वितीयेश पर राहु की भी पूर्ण दृष्टि है। अत राहु तथा सूर्य के प्रभाव से शिक्षा डाक्टरी की निकली।

उदाहरण (२)—यहां द्वितीय भाव पर सर्य तथा राहु का प्रभाव है। और द्वितीयेश गुरु पर शनि तथा राहु-अधिष्ठित राशि के स्वामी मंगल की दृष्टि है। अतः शनि, राहु तथा सूर्य के द्वितीय तथा द्वितीयेश पर प्रभाव के कारण डाक्टरी की विद्या प्राप्त करने का योग बना।

कु० सं० ९३
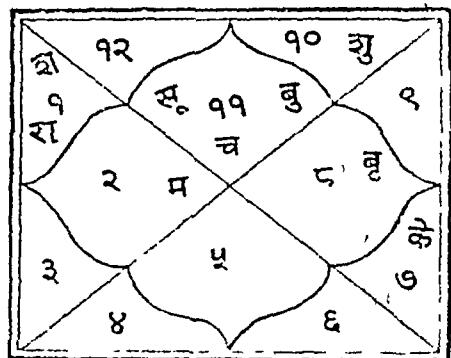
शास्त्रोक्ति — इस सबन्ध मे फलादीपिकाकार लिखते हैं :—

"लग्नं होराकल्पदेहोदयाख्य,
रूपं शीर्ष वर्तमानं च जन्म।
वित्तं विद्यास्वान्नपानानि भुक्तिं,
दक्षाक्ष्यास्य पत्रिका वाक् कुटुम्बम्॥ (१-१०)

अर्थात्—जहा प्रथम भाव के लग्न, होरा, कल्प, देह, उदय, रूप, शीर्ष, वर्तमान जन्म आदि नाम हैं वहाँ द्वितीय भाव के वित्त, विद्या, स्व, अन्न, पान, भुक्ति, दक्षिण आँख, मुँह, पत्रिका, वाक् कुटुम्ब ये नाम है। भाव यह है कि फलदीपिकार की सम्मति में विद्या का विचार द्वितीय भाव से करना चाहिये।

६५ शकट योग

परिभाषा—चन्द्रमा तथा बृहस्पति का षडष्टक हो अर्थात् वे एक दूसरे से छठे अथवा आठवे स्थित हों, और बृहस्पति लग्न से केन्द्र में न हो तो "शकट" नाम का योग बनता है।

फल—इस योग में उत्पन्न हुआ बालक यदि राजकुल में भी उत्पन्न हो तो निर्धन होता है। सदा कष्ट तथा परिश्रम का जीवन

प्राप्त है और राजा उस के प्रतिकूल रहता है।

हेतु—इस योग का आशय लग्न तथा चन्द्र लग्न को निर्बल देखना है। जब बृहस्पति जैसा सर्वोत्तम शुभ ग्रह बल्कि धन का कारक ग्रह न तो लग्न पर अपना किसी प्रकार से प्रभाव डाल रहा हो और न चन्द्र पर जैसा कि उपर्युक्त स्थिति मे होगा तब, स्पष्ट है कि लग्न निर्बल होगे। और जातक राज्य, धन, सुख, सब से वंचित होगा।

सूचना—गुरु को लग्न से तथा सूर्य से भी केन्द्रकोण मे न होना चाहिए। तब शकट योग और भी पूर्ण होगा।

षष्ठाष्टम गतश्चन्द्रात् सुरराजपुरोहित ।
केन्द्रादन्यगतो लग्नाद्योग शकटसज्ञितः ।।
अपि राजकुले जात. नि.स्वः शकटयोगज ।
क्लेशायासवशान्नित्यं संतप्तो नृपविप्रिय ।।

(जा. पारि ७-१०८, १०९)

कु० सं० ९४
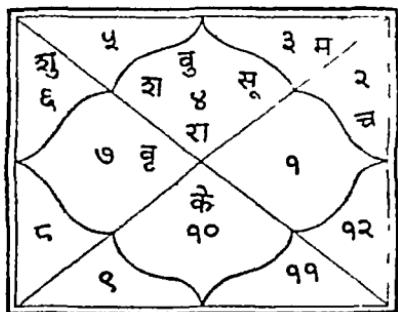
उदाहरण—यह कुण्डली महाराजा देवास (२) की है। यहाँ चन्द्र से गुरु षष्ठ है। अत राजयोग को कमजोर कर रहा है। आप देखेगे की गुरु की दृष्टि न लग्न पर है न लग्नेश पर, न चन्द्र पर, न राशीश पर, न सूर्य पर और सूर्याधिष्ठित राशिके स्वामी पर भी नही है।

९६ शीघ्र वैधव्यप्राप्ति योग

परिभाषा—द्वितीय भाव उसके स्वामी बुध तथा गुरु पर मगल आदि का प्रभाव हो तो शीघ्र ही पति की मृत्यु हो जाती है।

हेतु—द्वितीय भाव स्त्री के पति के लग्न अर्थात् सप्तम भाव से

अष्टम अर्थात् पति का आयु भाव होता है। जब द्वितीयेश बुध होगा तो इस का अर्थ यह है कि बुध के पीडित होने की अवस्था में पति को उसकी आयु की हानि अपेक्षाकृत बहुत शीघ्र होगी क्योंकि बुध अपना अच्छा या बुरा फल जैसा कि इसका नाम ("सद्य. प्रतापी" "कुमार" आदि) बतला रहे है बहुत शीघ्र देता है। बुध पर मगल की दृष्टि तो विशेष हानिकर होती है क्योकि वे परस्पर शत्रु भी है और फिर यदि द्वितीय भाव और गुरु भी मगल आदि द्वारा पीडित हो तो इसका अर्थ यह हुआ कि 'पति" गुरु भी कारक होता हुआ पीडित एव निर्बल है। और फिर यदि मगल के अतिरिक्त इन द्वितीय भाव द्वितीयेश, तथा गुरु पर केतु का भी प्रभाव हो तब तो मृत्यु का और भी शीघ्र हो जाना प्रकट होगा।

उदाहरण—इस स्त्री के पति की मृत्यु उनके विवाह के आठ दिन के अन्दर ही हो गई। नोट कीजिये कि पति के आयु भाव अर्थात् द्वितीय स्थान मे मिथुन राशि है जिसका स्वामी बुध है अत यदि मिथुन पर मगल का प्रभाव पडा तो पति की आयु को सख्त धक्का लगेगा। अब देखिये, राहु और केतु की ओर। नियम सख्या १६ को ध्यान मे रखते हुए आप देखेगे कि राहु और केतु अपनी दृष्टि के द्वारा मगल के प्रभाव को अपने द्वारा दृष्ट स्थानों पर डालेगे। केतु की नवम दृष्टि तो पति के आयु स्थान पर पड़ रही है इसका अर्थ यह है कि दो क्रूर मगल (एक केतु और दूसरा मंगल) इस स्थान पर अपना अनिष्टकारी मारणात्मक प्रभाव डाल रहे है। और राहु भी मंगल के प्रभाव को लेकर अपने से पचम भाव को अत्यन्त पीड़ित कर रहा है। चूँकि वहाँ बुध और गुरु विद्यमान है अत स्पष्ट है कि बुध पति की आयु को गुरु

कु० स० ९५
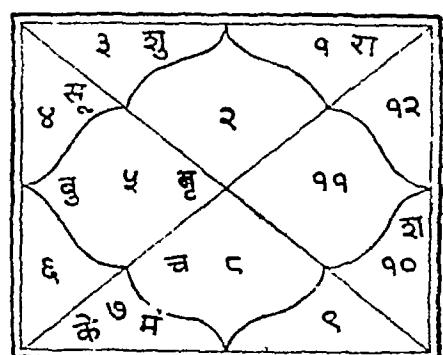
पति के जीवन को हानि पहुँचावेगा। इस प्रकार पति का अष्टम भाव अष्टमेश तथा पति कारक गुरु मगल तथा केतु के प्रभाव मे पाये गये, अब आप कह सकते है ठीक है परन्तु शुक्र एक शुभ ग्रह मित्र राशिका होकर पतिके आयु स्थान मे बैठा है। उसने पति की आयु मे वृद्धि क्यो नही की ? इस प्रश्न का उत्तर सीधा सा यह है कि नियम सख्या १७ का अध्ययन करके आप यदि देखेगे तो पावेगे कि शुक्र, केतु .तथा मगल की अधिष्ठित राशि तुला का स्वामी होने से एक नैसर्गिक शुभ ग्रह होता हुआ भी अपने अन्दर मगल तथा केतु के दो मारणात्मक प्रभाव रखता है और इन मारणात्मक प्रभावो को पति की आयु पर डाल रहा है।

६७ शराबी होने का योग

परिभाषा—लग्न लग्नाधिपति चन्द्रलग्न चन्द्र लग्नाधिपति तथा द्वितीय द्वितीयाधिपति पर यदि राहु अथवा शनि का प्रभाव हो तो मनुष्य को शराब पीने का दुर्व्यसन होता है।

हेतु—लग्न तथा द्वितीय भाव "मुख" का जिस द्वारा वस्तुऐ खायी और पी जाती है, प्रतिनिधि है। इसी प्रकार चन्द्रका भी खाने पीने से विशेष सम्बन्ध है। अत जब राहु जैसे दैत्यराज का पीने से घनिष्ट सबन्ध होगा तो शराब खोरी की आदत आ ही जायेगी।

उदाहरण—यह एक ऐसे सज्जन की कुण्डली है जो चाहे कुछ भी हो जाए शराब और वह भी काफी मात्रा मे पिये विना नही रह सकते। यहाँ देखिये कितना प्रबल योग है। लग्नाधिपति बुध द्वितीयाधिपति शुक्र तथा चन्द्र सब एकादश मे इकट्टे हैं और सभी पर राहु दैत्यराज की पूर्ण दृष्टि है। अत शराबी होना सिद्ध है।

कु० स० ६६
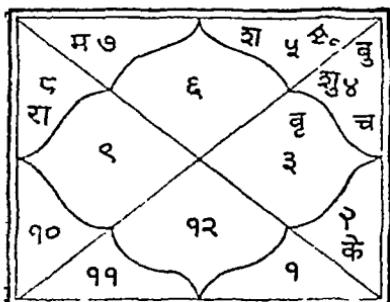
चन्द्र के कारकत्व गुणों का वर्णन करते हुए उत्तरकालामृतकार खण्ड v श्लोक २९ में लिखते है।

शास्त्रोक्ति—"जीवो भोजनदूरदेशगमने लग्नं च दो व्यधिय."

अर्थात् जीवन, भोजन, दूरदेशगमन, लग्न, तथा कन्धों का विचार चन्द्र से करना चाहिये। भोजन मे मदकारी वस्तुओं का सेवन सम्मिलित होता ही है।

६८ श्रीनाथ योग

परिभाषा—यदि सप्तमाधिपति दशम स्थान में अपनी उच्च राशि का होकर स्थित हो अथवा दशमाधिपति भाग्याधिपति से युक्त हो तो "श्रीनाथ" योग बनता है।

फल—श्रीनाथ योग में उत्पन्न मनुष्य इन्द्र के समान प्रतापी राजा होता है।

हेतु—जहाँ तक कर्माधिपति के नवमाधिपति से युक्त होने का प्रश्न है यह तो प्रसिद्ध पाराशर योग है जहॉ केन्द्र तथा त्रिकोण के स्वामियो का परस्पर सबन्ध राज देता है और यहा तो केन्द्रो में प्रमुख केन्द्र दशम केन्द्र और त्रिकोण स्थानो मे प्रमुख स्थान नवम स्थान का सम्बन्ध कहा है। अत राज्य प्राप्ति युक्ति युक्त है। सप्तमाधिपति के सम्बन्ध मे हमे देखना है कि यहॉ "भावात् भावम्" का सिद्धान्त काम कर रहा है अर्थात् दशम भाव का वही फल है जो दशम से दशम का अर्थात् सप्तम भाव का। अत जब सप्तमेश दशम मे उच्च होगा तो दशम को दो प्रकार से उत्तमता की प्राप्ति होगी, एक तो एक उच्चग्रह की स्थिति की और दूसरे दशम से दशम के स्वामी के उच्च होने की। अत राज्य प्राप्ति यहॉ भी हेतुयुक्त है।

शास्त्रोक्ति—कामेश्वरे कर्मगते स्वतुङ्गे कर्माधिपे भाग्यपसयुते च।
श्रीनाथयोग. शुभदस्तदानीजातो नरः शक्रसमो नृपाल ॥
(जा० पा० ७-१४३)

कु० स० ६७
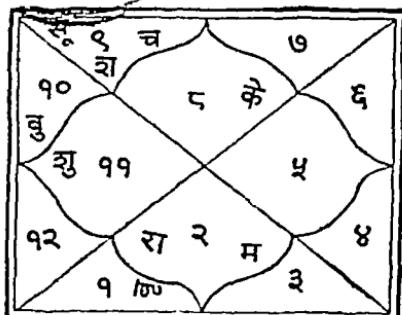
यह कुण्डली एक इन्कमटेक्स प्रेक्टीशनर की है यहा नवमाधिपति चन्द्र दशमाधिपति सूर्य के साथ है जिस से श्री नाथ योग बन रहा है।

६६ शश योग

परिभाषा—जब लग्न से केन्द्र मे शनि अपनी उच्च राशि का अथवा अपनी ही राशि का होकर बैठे तो "शश" नाम का "पचमहा पुरुष" योगो के अन्तर्गत योग होता है।

फल—शनि के प्राय सब शुभ गुणो आदि की प्राप्ति।

हेतु—उपर्युक्त स्थिति मे लग्न प्रबल शनि द्वारा प्रभावित है। है।

शास्त्रोक्ति—(1) लघु द्विजास्योऽद्रिगत सकोप,
शठोऽतिशूरो विजनप्रचारः।
वनाद्रिदुर्गेषु नदीषु सक्त प्रियातिथिर्नातिलघुः प्रसिद्ध ॥ ४-१

(ii) नानासेना निचयनिरतो दन्तुरश्चापि किंचि
द्धातोर्वादि भवति कुशलश्चञ्चलो लोलनेत्र ।
स्त्रीससक्त परधनहरो मातृभक्त सुजघो,
मध्ये क्षाम सुललितमती रन्ध्रवेदी परेषाम् ॥
(मानसागरी ४ २)

(iii) भूपो वा सचिवो वनाचलरत सेनापति क्रूरधी।
धातोर्वादविनोदवाचनपरो दाता सरोषेक्षण ॥
(जा० पा० ७—६५)

अर्थ—(1) छोटे दातो वाला, वनचारी, क्रोधयुक्त, दुष्ट, शूरवीर

एकान्तसेवी, वनों, और नदियो का सेवन करने वाला, अतिथियोंका संवक और मध्यम शरीर का शश योग मे उत्पन्न मनुष्य होता है।

(ii) नाना प्रकार की सेना वाला, धातु कार्य मे कुशल, चचल, स्त्री मे आसक्त, दूसरे का धन हरने वाला, माता का भक्त, सुदृढ़ जघा वाला, शरीर के मध्य में पतला, ललित, मतिमान्, दूसरो के दोषो से परिचित ऐसा मनुष्य शश योग मे होता है।

(iii) राजा, अथवा मन्त्री, बन पर्वतो में घूमने वाला, सेनापति कूर बुद्धि वाला धातु के व्यापार मे कुशल, दूसरों को ठगने वाला दानी तथा क्रोधभरी दृष्टि वाला ऐसा मनुष्य शश नाम के योग मे उत्पन्न होने वाला होता है।

उदाहरण—यह एक व्यापारी सज्जन की कुण्डली है जिनको सहस्त्रो रुपये की आय जायदाद के किराये के रूप में है और जो अपने शहर में एक प्रतिष्ठित मुख्य व्यक्ति माने जाते है। यहाँ शनि केन्द्र में स्वक्षेत्री होकर शश योग बना रहा है जिसके फलस्वरूप भूमि मकान आदि से आय, जनता मे मुख्यता आदि गुणों की प्राप्ति हुई है।
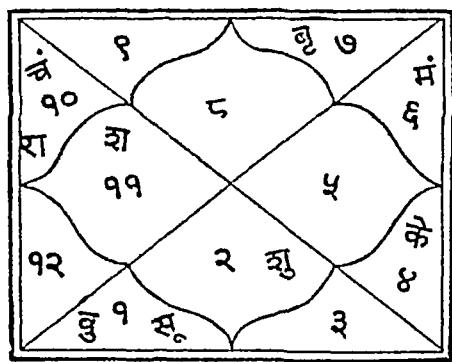
कु० स० ९८

७० शारदा योग

परिभाषा—(i) दशम भाव का स्वामी पंचम भाव मे हो बुध केन्द्र मे हो, सूर्य सिंह राशि मे हो और बलवान् भी हो तो 'शारदा-योग' होता है।

(ii) चन्द्र से नवम पंचम गुरु हो, बुध से मगल त्रिकोण में अर्थात् पचम अथवा नवम हो और बुध से गुरु लाभ स्थान में हो तो शारदा नाम का योग बनता है।

उपजाति—स्त्रीपुत्रबन्धुसुखरूप गुणानुरक्ता
भूपप्रिया गुरुमहीसुरदेवभक्ता ।
विद्याविनोदरतिशीलतपोबलाढ्या,
जाता स्वधर्मनिरता भुविशारदाख्ये ॥

फल—स्त्री, पुत्र, बन्धु आदि के सुख से युक्त, गुणो से गुणी, राज्य की दृष्टि मे प्रिय, गुरु, ब्राह्मण, देवताओ का भक्त, विद्या तथा खेल-कूद तथा अन्य मनोरजन के साधनो मे रत, तपस्वी और अपने धर्म मे लगा हुआ शारदा योग वाला होता है।

हेतु—शारदा योग एक बुद्धि अथवा "ज्ञान" का योग है। इसमे बुध तथा गुरु का अथवा बुद्धि स्थान (पचम) का बलवान् होना अपेक्षित है। जैसे यदि कर्मों का बुद्धि स्थान से सबन्ध हो तो बुद्धि की वृद्धि होती है। बुध केन्द्र मे हो तो बुद्धि की वृद्धि होती है। सूर्य बलवान् हो तो ज्ञान की वृद्धि होती है। चन्द्र को गुरु देखता हो तो ज्ञान की वृद्धि है। बुध से गुरु उपचय मे हो तो ज्ञान की प्राप्ति है।

७१ सरस्वती योग

परिभाषा शुक्र गुरु तथा बुध यदि केन्द्र अथवा त्रिकोण मे स्थित हो अथवा यही तीन शुभ ग्रह द्वितीय भाव मे अपने उच्च अथवा मित्र स्थान मे स्थित हो और गुरु बलवान् हो तो "सरस्वती" योग होता है।

फल—"सरस्वती' योग मे उत्पन्न होने वाला मनुष्य धन से युक्त, गद्य-पद्य, अलकार आदि शास्त्रो मे निष्णात, कवि, शास्त्रो को जानने वाला, यशस्वी, स्त्री, पुत्र से युक्त, तथा राज्य से सन्मानित होता है।

हेतु—द्वितीय स्थान "विद्या" का है। जिस प्रकार के ग्रह इस भाव को प्रभावित करेगे मनुष्य की विद्या उसी प्रकार की होगी। अतः जब गुरु, बुध, शुक्र जस तीनो शास्त्रज्ञ तथा कलात्मक ग्रह इस भाव पर अपना प्रभाव डालेगे तो मनुष्य को महान् विद्वान्, कलाकार आदि बना ही देंगे। कहा भी है —

शास्त्रोक्ति — (i) शुक्रवाक्पतिसुधाकरात्मजै,
केन्द्रकोणसहितैः द्वितीयगैः ।
स्वोच्चमित्रभवनेषु वाक्पतौ,
वीर्यगे सति सरस्वतीरिता ।। (फलदीपिका-६-२६)

(ii) धीमान् नाटकगद्यपद्यगणना-अलकारशास्त्रेष्वय,
निष्णातः कविताप्रबन्धरचनाशास्त्रार्थपारगतः ।
कीर्त्याक्रान्तजगत्त्रयोऽतिधनिको दारात्मजैरन्वित,
स्यात् सारस्वतयोगजो नृपवरैः सपूजितो भाग्यवान् ।।
(फलदीपिका-६-२७)

कु० सं० ६६

बु ८ शु | ति ६ के प्र
९ | ७ सू | ५
१० | ४
११ | १ | ३
रा १२ | चं २ मं

उदाहरण—यह कुंडली पं० भगवत् दत्त विख्यात वैदिक स्कालर की है। यहाँ देखिये चार शुभ एवं प्रबल ग्रहों-बुध, शुक्र, गुरु तथा पूर्ण चन्द्र-का प्रभाव द्वितीय स्थान पर है । द्वितीय स्थानाधिपति मगल यद्यपि द्वादश स्थान मे है तथापि यह स्थिति धन भाव के लिये कोई हानिकर नही क्योंकि मगल अपनी राशि मेष को पूर्ण दृष्टि से देख रहा है और स्वय गुरु से दृष्ट है। इसका परिणाम यह है कि द्वितीय भाव जिसमें मगल की दूसरी राशि वृश्चिक स्थित है बलवान् हो गया है। अस्तु इस योग के पीछे भाव इतना ही हैं कि द्वितीय स्थान पर अत्यधिक शुभ प्रभाव हो और गुरु बलवान् हो (यहां गुरु वक्री होने से बली है) ।
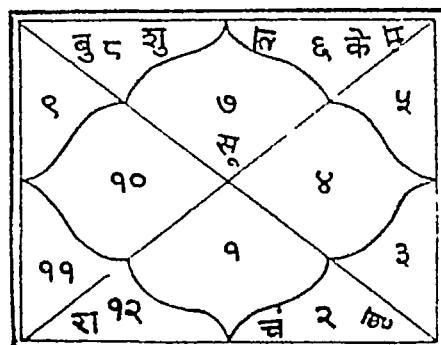
संगीतविद्या योग

परिभाषा—जब द्वितीय तथा द्वितीयेश का सबन्ध पचम भाव से तथा शुक्र से हो तो मनुष्य संगीतज्ञ होता है ।

हेतु—जैसा कि हम अन्यत्र "विद्यादिशा ज्ञान" योग के अन्तर्गत

लिख चुके है द्वितीय भाव विद्या (Education) अथवा जानकारी का भाव है। पचम भाव का सबन्ध गाने बजाने तथा सिनेमा आदि आमोद-प्रमोद (Entertainment) के स्थानो से है और शुक्र तो गाने बजाने का "कारक" ग्रह है ही। इसलिये जब शुक्र तथा पचमेश का सबन्ध जानकारी तथा भाषण के भाव अर्थात् द्वितीय तथा उसके स्वामी से होगा तो स्वाभाविक है कि मनुष्य मे शुक्र तथा पचम सबन्धी गाने बजाने की कला की योग्यता अथवा जानकारी आ जाये।

कु० स० १००
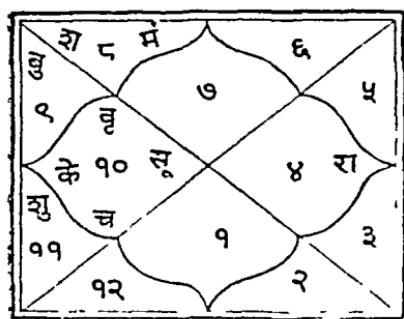
उदाहरण—यह कुंडली विख्यात म्यूजिक डाइरेक्टर ओ पी नैय्यर की है। यहाँ पचम भाव का स्वामी शनि द्वितीय भाव मे द्वितीयेश के साथ युति कर रहा है और दूसरी बात यह है कि वह शनि शुक्र-अधिष्ठित राशि का स्वामी है जिसका अर्थ यह हुआ कि वह जानकारी अथवा विद्या के भाव से सगीत (शुक्र) का घनिष्ठ सपर्क उत्पन्न कर रहा है और इस व्यक्ति को एक उच्च कोटि का म्यूजिक डाइरेक्टर बना रहा है।

शास्त्रोक्ति—द्वितीये पचमे जीवे बुधशुक्रयुतेक्षिते।
क्षेत्रे तयोर्वा सप्राप्ते योग स्यात् स कलानिधि ॥
(जा पारि. ७-१५८)

अर्थात् कुण्डली के द्वितीय तथा पचम भाव में गुरु स्थित हो और वह शुक्र तथा बुध के सहित हो अथवा वहाँ बुध अथवा शुक्र की राशि मे स्थित हो तो सगीत आदि कलाओ मे निपुण होने का योग है।

७२ सुन्दरी स्त्री (या सुरूप पति) प्राप्ति योग

परिभाषा—यदि सप्तम स्थान मे समराशि हो और उसका स्वामी तथा शुक्र दोनोंभी समराशि में स्थित हों और अष्टम अष्टमेश पर शनि का प्रभाव न हो तो सुन्दरी स्त्रीप्राप्तियोग बनता है।

फल—ऐसे योग मे उत्पन्न होने वाले व्यक्ति को अतीव सुन्दर स्त्री की प्राप्ति होती है।

हेतु—स्त्रियो के लिये सम राशि उनके नैसर्गिक स्वभाव स्त्रीत्व आदि की वर्द्धक होती है अत जब स्त्री के द्योतक तीनो अग अर्थात् सप्तम भाव-सप्तमेश तथा शुक्र सभी सम (Even) राशि मे होंगे तो स्पष्ट है कि स्त्री मे सुन्दरता का सचार होगा।

शास्त्रोक्ति प्रकृतिस्था लग्नेन्दो समभे सच्छीलरूपाढ्या।
भूषणगुणैरुपेता शुभवीक्षितयोश्च युवती स्यात् ॥

जब लग्न तथा चन्द्र लग्न सम राशि मे हों तथा शुभ दृष्ट हों तो स्त्री सुन्दर तथा शुभगुणो वाली होती है। (सारावली; ४५-३)

कु० स० १०१

उदाहरण—यह उस व्यक्ति की कुण्डली है जिस की स्त्री अतीव सुन्दर है। यहाँ सप्तम भाव मे सूर्य विद्यमान् है। अर्थात् सप्तम भाव में सूर्य लग्न भी विद्यमान् है। दूसरे शब्दो मे सप्तम लग्न तथा सप्तम सूर्य लग्न दोनो सम राशि मे है। दोनो का स्वामी चन्द्र एक स्त्री ग्रह होता हुआ पुनः सम राशि मे है। शुक्र भी सम राशि में स्त्री ग्रह चन्द्र के साथ है। अत स्त्री सौन्दर्य उत्कृष्ट है।

इसी प्रकार पत्नी का एक सुन्दर पति होना अर्थात् पुरुष रूप से लावण्य युक्त होना तब होगा जब कि स्त्री की कुण्डली मे सप्तम भाव मे पुरुष राशि हो और सप्तमेश भी पुरुष राशि मे विद्यमान् होकर गुरु आदि शुभ पुरुष ग्रहों द्वारा दृष्ट हो।